पुनरागमन

पुनर्जन्म का विज्ञान

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

की शिक्षाओं पर आधारित

"उसने इन सभी रूपों और चेहरों को सहस्रों सम्बन्धों में परस्पर जुड़े हुए देखा...नया जन्म लेते हुए देखा। सारे सम्बन्ध मर्त्य थे—क्षणभंगुर वस्तुओं का एक आवेशपूर्ण, दु:खदायी उदाहरण। उनमें से कोई नहीं मरा, वे केवल बदल गये, सदा जन्मते रहे; निरन्तर उन्हें नया चेहरा मिलता रहा; केवल काल ही था जो एक चेहरे और दूसरे चेहरे के बीच खड़ा था।"

—हरमन हेस

नोबेल पुरस्कार विजेता, *सिद्धार्थ*

"पहली बार यह विचार करने से पूर्व कि जीवन में खाने, लड़ने अथवा समूह में धाक जमाने से बढ़कर भी कुछ है, क्या आपने कभी यह सोचा है कि हम कितने जीवनों से गुजर चुके होंगे? एक हजार जीवन, जोन, दस हजार!...जो कुछ हम वर्तमान जीवन में सीखते हैं, उसी में से हम अगला जीवन चुनते हैं। किन्तु जोन, तुमने एक ही जीवन में इतना कुछ सीख लिया है कि तुम्हें यहाँ तक पहुँचने के लिए एक हजार जीवनों में से गुजरना नहीं पड़ा।"

—रिचर्ड बाख

जोनाथन लिविंस्टन सीगल

"जिस प्रकार हम अपने वर्तमान जीवन में सहस्रों स्वप्नों के बीच जीते हैं, वैसे ही हमारा वर्तमान जीवन उन सहस्रों जीवनों में से एक है जिसमें हम एक अन्य, अधिक यथार्थ जीवन से प्रवेश करते हैं...और तब मृत्यु के बाद वापस लौट जाते हैं। हमारा जीवन उस अधिक यथार्थ जीवन के स्वप्नों में से केवल एक है, और इसलिए यह अनन्त प्रक्रिया उस अन्त तक, उस सत्य जीवन—ईश्वरीय जीवन में पहुँचने तक चलती रहती है।"

—काउन्ट लियो टॉल्सटॉय

विषय-सूची

आमुख - अमरत्व की खोज ..... *xi*

भूमिका - चेतना का रहस्य ..... *xv*

१. पुनर्जन्म : सुकरात से सेलिंगर तक .. १

प्राचीन यूनान २
यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम ३
मध्ययुग और पुनर्जागरण ५
नव-आलोक का युग ६
अध्यात्मवाद ८
आधुनिक युग १०
भगवद्गीता : पुनर्जन्म पर कालातीत स्रोत-ग्रन्थ १४

२. शरीरों का परिवर्तन २१

आत्मा की प्रतीति कैसे हो? २३
"मैं ब्रह्म अर्थात् आत्मा हूँ" २४
इसी जीवन में पुनर्जन्म २६
शरीर स्वप्नवत् है २८
प्रत्येक व्यक्ति जानता है, "मैं यह शरीर नहीं हूँ" ३०
मानव-जीवन का ध्येय ३२
पूर्णता कैसे प्राप्त करें? ३५

पशुओं से ऊपर उठना ३६
अमरत्व का रहस्य ३८

३. आत्मानुसन्धान ३९

हृदय-शल्यचिकित्सक जानना चाहते हैं कि आत्मा है क्या? ४०
श्रील प्रभुपाद वैदिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं ४२

४. पुनर्जन्म के तीन इतिवृत्त ४७

१. दस लाख माताओं वाला राजकुमार ४८
२. ममता का शिकार ५८
राजा भरत हिरन का जन्म लेते हैं ६४
जड़ भरत का जीवन ६५
राजा रहूगण को जड़भरत का उपदेश ६८
३. उस पार के आगन्तुक ७५

५. आत्मा की रहस्य-यात्रा ८५

एक जीवन समय की एक कौंध है ८५
तुम्हें अपना अभीष्ट शरीर प्राप्त होता है ८६
मृत्यु का अर्थ है, अपने पिछले जीवन की विस्मृति ८६
आत्मा पहले मानव-शरीर ग्रहण करता है ८७
आधुनिक वैज्ञानिक पुनर्जन्म के विज्ञान से अनजान हैं ८७
पुनर्जन्म का अज्ञान भयावह है ८७
"और तू मिट्टी में लौट जायेगा" ८९
ज्योतिष-विज्ञान और पुनर्जन्म ८९
आपके विचार आपके भावी शरीर का सृजन करते हैं ९१
कुछ लोग पुनर्जन्म क्यों स्वीकार नहीं कर सकते? ९१

कुछ वर्ष और, बस!..... ९२
शल्य-चिकित्सा के बिना लिंग-परिवर्तन ९३
स्वप्न और बीते हुए जीवन ९४
अति-मूर्च्छाएँ और अगला जीवन ९४
भूत-प्रेत और आत्महत्या ९५
शरीरों का बदलना : माया का प्रतिबिम्ब ९५
राजनेता अपने देशों में पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं ९६
पशु हत्या में क्या दोष है? ९७
विकास : योनियों के मार्ग से आत्मा की यात्रा ९७
माया का भ्रम ९९

६. पुनर्जन्म का तर्क-विज्ञान १००

७. लगभग पुनर्जन्म १०६

पुनर्जन्म : वास्तविक शरीर-बाह्य अनुभव १०७
पुनर्जन्म के विषय में सम्मोहन से उत्पन्न प्रत्यावर्तन हमें पूर्ण ज्ञान नहीं देते हैं ११०
एक बार मानव, सदा मानव? ११५
मृत्यु कष्टरहित परिवर्तन नहीं है ११५

८. लौट कर मत आओ ११९

कर्म और पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिए व्यावहारिक प्रणालियाँ १२३

श्रील प्रभुपाद के विषय में १३०

समर्पण

यह पुस्तक हम हमारे परम प्रिय गुरुदेव एवं मार्गदर्शक श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद को अर्पित करते हैं, जिन्होंने पुनर्जन्म के प्रामाणिक विज्ञान के साथ-साथ भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य शिक्षाएँ पाश्चात्य जगत् को प्रदान कीं।

—प्रकाशक

आमुख

अमरत्व की खोज

हम ऐसा व्यवहार कर रहे थे जैसे हमें सदैव जीवित रहना है; बीटल्स के दिनों में प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता था, ठीक है? मेरा मतलब है, हम में से कौन सोचता था कि हमें मरना है?

—भूतपूर्व बीटल पॉल मैक्कार्टने

यदि आप अपनी नियति को सचमुच अपने वश में लाना चाहते हैं, तो आपको पुनर्जन्म और उसकी विधि को समझना होगा। इतना सरल है यह।

कोई मरना नहीं चाहता। हममें से अधिकतर चाहेंगे कि वे बिना झुर्रियों के या गठिया रोग या सफेद बाल हुए बिना, अपनी पूरी शक्ति के साथ, सदा जीवित रहें। यह स्वाभाविक है क्योंकि जीवन का सर्वप्रथम और आधारभूत सिद्धान्त है सुख का भोग। काश! हम सदा के लिए जीवन के सुखों का भोग कर पाते!

अमरत्व के लिए मनुष्य की सनातन खोज इतनी मौलिक है कि

मरने की बात सोचना भी उसके लिए लगभग असम्भव है। पुलिट्ज़र पुरस्कार-विजेता (*द ह्यूमन कॉमेडी* के लेखक) विलियम सरोयन ने अपनी मृत्यु के कुछ दिवस पूर्व समाचार पत्रों के समक्ष यह घोषणा की, "हममें से प्रत्येक को मरना है; परन्तु मैं हमेशा विश्वास करता रहा कि मेरे विषय में अपवाद बन जायेगा। लेकिन अब क्या?" यह घोषणा अधिकतर लोगों की विचारधारा की प्रतिध्वनि थी।

हममें से शायद ही कभी कोई मृत्यु अथवा मृत्यु के बाद क्या होता है इन के विषय में सोचता होगा। कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु प्रत्येक वस्तु का अन्त है। कुछ स्वर्ग और नर्क में विश्वास रखते हैं। अन्य कुछ लोगों का मत है कि उनका यह जीवन अनेक बीते हुए जीवनों में से एक है और भविष्य में भी हम जीवित रहेंगे। विश्व की एक-तिहाई से भी अधिक जनता—१.५ अरब से अधिक—पुनर्जन्म को जीवन के अटल तथ्य के रूप में स्वीकार करती है।

पुनर्जन्म कोई "विश्वास-व्यवस्था" नहीं है, न ही कोई मनो-वैज्ञानिक उपाय है, जिसके द्वारा मृत्यु की "भयंकर अन्तिमता" से बचा जा सके, बल्कि यह एक सुनिश्चित विज्ञान है, जो हमारे अतीत और आगामी जीवनों की व्याख्या करता है। इस विषय पर अनेक किताबें लिखी गयी हैं जो सामान्यतया सम्मोहन-जनित भूतकाल की स्मृतियात्रा (hypnotic regression), आसन्न-मृत्यु के अनुभव, शरीरबाह्य-स्थिति की अनुभूतियाँ अथवा **देजा वू** अर्थात् "मैंने कहीं, कभी, पहले भी यह देखा है" जैसे अनुभवों पर आधारित होती हैं।

किन्तु पुनर्जन्म पर लिखा गया अधिकांश साहित्य अपूर्ण ज्ञान पर आधारित है, बहुत कुछ अनुमानित, दिखावटी व अनिर्णायक है। कुछ पुस्तकें मनुष्यों के उन अनुभवों को प्रस्तुत करती हैं, जो सम्मोहन के प्रभाव से पूर्व-जन्मों की स्मृतियों तक पहुँचाए जाते हैं। वे उन घरों का विस्तृत वर्णन देते हैं जिनमें वे रहते थे, उन सड़कों का जिन पर

वे चले थे, उन बाग-बगीचों का जिनमें वे बच्चों के रूप में जाया करते थे, तथा अपने पूर्व-जन्म के माता-पिता, मित्रों और सम्बन्धियों का नाम बताते हैं। यह सब पढ़ने के लिए रोचक है और जहाँ इन सब पुस्तकों ने निश्चित रूप से पूर्वजन्म के प्रति बढ़ती हुई लोक-रुचि और विश्वास को उत्तेजित किया है, वहाँ दूसरी ओर ध्यानपूर्वक जाँच-पड़ताल करने से पता लगा है कि इन तथाकथित पूर्व-जन्म प्रत्यावर्तनों में से बहुत से वर्णन काल्पनिक उड़ानें हैं, त्रुटिपूर्ण हैं और यहाँ तक कि धोखाधड़ी भी हैं।

परन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन सब लोकप्रिय पुस्तकों में से कोई भी पुनर्जन्म से सम्बन्धित आधारभूत तथ्यों की व्याख्या नहीं करतीं, जैसे कि वह सरल प्रक्रिया क्या है जिससे आत्मा सनातन रूप से एक भौतिक शरीर से दूसरे में देहान्तरण करता है। ऐसे विरले ही उदाहरण हैं जिनमें आधारभूत सिद्धान्तों की विवेचना की गई हो और उनमें भी सामान्यतः लेखक अपनी परिकल्पनाओं को प्रस्तुत करते हैं कि कैसे और किन सुनिश्चित मामलों में पुनर्जन्म घटित होता है, मानो कुछ विशिष्ट अथवा प्रतिभा-सम्पन्न प्राणी ही पुनर्जन्म लेते हों, अन्य नहीं। इस प्रकार का प्रस्तुतीकरण पुर्नजन्म के विज्ञान को व्याख्यायित नहीं करता, बल्कि अनेक भ्रामक कपोल-कल्पनाओं और विरोधाभासों को पैदा कर देता है, जिसके फलस्वरूप पाठक के मन में दर्जनों अनुत्तरित प्रश्न घर कर जाते हैं।

उदाहरण के लिए, क्या कोई व्यक्ति तत्काल ही पुर्नजन्म ग्रहण करता है, अथवा धीरे-धीरे, बहुत लम्बी समयावधि में? क्या दूसरे जीवधारी जैसे पशु, मानव-शरीरों में पुनर्जन्म ले सकते हैं? क्या मनुष्य पशु के रूप में प्रकट हो सकता है? यदि ऐसा है, तो कैसे और क्यों? क्या हम सदैव पुनर्जन्म लेते रहते हैं, अथवा यह कहीं समाप्त हो जाता है? क्या आत्मा सदैव नरक में दुःख भोग सकता है, अथवा स्वर्ग में

सदा के लिए सुख भोग सकता है ? क्या हम अपने भावी पुनर्जन्मों को नियन्त्रित कर सकते हैं ? कैसे ? क्या हमारा पुनर्जन्म दूसरे ग्रहों अथवा दूसरे ब्रह्माण्डों में सम्भव है ? क्या हमारे सत्कर्म और दुष्कर्म आगे मिलने वाले शरीर के निर्धारण में कोई भूमिका निभाते हैं ? कर्म और पुनर्जन्म का क्या सम्बन्ध है ?

पुनरागमन इन प्रश्नों का पूरा-पूरा उत्तर देती है क्योंकि यह पुनर्जन्म के वास्तविक स्वरूप की वैज्ञानिक रूप से व्याख्या करती है। अन्त में, यह पुस्तक पाठक को वे व्यावहारिक निर्देश देती है, जिनसे वह रहस्यमय और सामान्यतया गलत समझे गये पुनर्जन्म के प्रत्यक्ष तथ्य को पूर्णता से समझ सके और इससे ऊपर उठ सके। पुनर्जन्म एक ऐसी वास्तविकता है, जो मानव-नियति के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भूमिका

चेतना का रहस्य

मृत्यु मनुष्य की अत्यन्त रहस्यमयी, निष्ठुर और अपरिहार्य शत्रु है। क्या मृत्यु का अर्थ है जीवन का अन्त, अथवा क्या यह एक अन्य जीवन के लिए, अन्य आयाम के लिए अथवा दूसरे संसार के लिए द्वार खोलती है ?

यदि मृत्यु के अनुभव के पश्चात् मनुष्य की चेतना जीवित रहती है, तब वह क्या है जो नूतन अस्तित्वों की ओर इसके अवस्था-परिवर्तन का निर्धारण करता है ?

इन रहस्यों की स्पष्ट जानकारी पाने के लिए, परम्परागत रूप से मनुष्य प्रबुद्ध दार्शनिकों की ओर रुख करता रहा है और उच्चतर सत्य के प्रतिनिधि रूप में उनके उपदेशों को स्वीकार करता आया है।

उच्चतर अधिकारी से ज्ञान प्राप्त करने की इस विधि की कुछ लोग आलोचना करते हैं। अन्वेषक भले ही कितनी भी सावधानी से उसका विश्लेषण करे। समाज दार्शनिक के विज्ञ ई.एफ. शूमेकर, *स्मॉल इज ब्यूटीफुल* के रचयिता कहते हैं कि हमारे आधुनिक समाज में जब लोग प्रकृति और परम्परागत ज्ञान से कट जाते हैं, वे "हंसी उड़ाना फैशन की बात समझते हैं...और केवल उसी पर विश्वास करते हैं जिसे

वे देख, छू और मापतौल सकें'' अथवा, जैसी कि कहावत है, ''आँखों देखा सो सत्य।''

परन्तु जब मनुष्य भौतिक इन्द्रियों की पहुँच से परे, माप के उपकरणों से परे और मीमांसा के भी परे किसी तत्त्व को समझने का प्रयास करता है, तब उसके पास ज्ञान के उच्चतर स्रोत के पास जाने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता।

कोई भी वैज्ञानिक प्रयोगशाला के अनुसन्धानों के माध्यम से चेतना के रहस्य अथवा भौतिक शरीर के विनष्ट हो जाने के पश्चात् इसके गन्तव्य की सफल व्याख्या नहीं कर सका है। इस क्षेत्र में शोध ने विभिन्न परिकल्पनाओं को जन्म दिया है, किन्तु इनकी सीमाओं को पहचानना आवश्यक है।

दूसरी ओर, पुनर्जन्म के व्यवस्थित सिद्धान्त हमारे अतीत, वर्तमान और भविष्य के जीवनों से सम्बन्धित सूक्ष्म विधानों की विस्तृत व्याख्या करते हैं।

यदि किसी को पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सही से समझना है, तो उसे चेतना की आधारभूत धारणा को भौतिक शरीर की रचना करने वाले भौतिक पदार्थ से भिन्न और एक उत्कृष्ट शक्ति के रूप में स्वीकार करना होगा। सोचने, अनुभव करने और संकल्प करने की अद्वितीय मानव-क्षमताओं के परीक्षण से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। क्या डी.एन.ए. के सूत्र अथवा आनुवांशिक कोषिकाएँ मानव की परस्पर प्रेम और सम्मान की भावनाओं को उत्प्रेरित कर सकते हैं? कौन-सा परमाणु अथवा कण शेक्सपीयर के *हैमलेट* तथा बाख के *मास इन बी माइनर* में सूक्ष्म कलात्मक भेदों को पैदा करने के लिए उत्तरदायी है? मानव और उसकी अनन्त क्षमताओं की व्याख्या केवल परमाणुओं और कणों से ही नहीं की जा सकती। आधुनिक भौतिकी के जनक आईन्स्टाइन ने स्वीकार किया था कि चेतना का यथेष्ट स्वरूप का विवेचन भौतिक

घटनाओं के सन्दर्भ में नहीं किया जा सकता। इस महान् वैज्ञानिक ने एक बार कहा था, ''मेरा विश्वास है कि विज्ञान के स्वयं-सिद्ध विधानों को मानव-जीवन पर लागू करने का वर्तमान फैशन न केवल पूरी तरह गलत है, अपितु कुछ हद तक निन्दा के योग्य भी है।''

सचमुच, वैज्ञानिक उन भौतिक नियमों के माध्यम से चेतना की व्याख्या करने में असफल रहे हैं, जो उनके दृष्टि क्षेत्र के भीतर अन्य सभी वस्तुओं पर लागू होती है। उस असफलता से निराश होकर शरीर-विज्ञान और औषधि-विज्ञान में नोबेल-पुरस्कार विजेता ऑल्बर्ट सेन्ट जॉर्ज (Albert Szent-Györgyi) ने दु:ख प्रकट करते हुए हाल ही में कहा था, *''जीवन के रहस्य की मेरी खोज में अन्त में मेरे हाथ परमाणु और* इलेक्ट्रॉन्स ही लगे, जिनमें कोई जीवन नहीं है। इस राह में, कहीं न *कहीं, जीवन मेरी अंगुलियों के बीच से रिस कर निकल गया। अत:* अपने बुढ़ापे में अब मैं अपने पूर्वकृत कार्यों पर पुन: विचार कर रहा हूँ।''

कणों की परस्पर अन्त:क्रिया से चेतना का आविर्भाव होता है, इस अवधारणा को स्वीकार करने के लिए हमें बहुत विश्वास रखना होता है—*उससे भी बड़ा जिसकी आवश्यकता आध्यात्मिक व्याख्या* के लिए होती है। जैसा कि *विख्यात जीव-विज्ञानी, थॉमस हक्सले* ने कहा था, ''मुझे यह बहुत स्पष्ट दिखाई देता है कि विश्व में एक तीसरी चीज है, अर्थात् चैतन्य, जिसे...मैं न तो भौतिक तत्त्व अथवा शक्ति, अथवा इनमें से किसी का भी विचार-योग्य संशोधित रूप मान सकूँ।''

इसके अतिरिक्त चेतना के अद्वितीय गुण-लक्षणों की स्वीकृति भौतिकी नोबेल पुरस्कार विजेता नील्स बोर ने दी थी, जिसने कहा था, ''हमें स्वीकार करना होगा कि भौतिकी अथवा रसायन विज्ञान में हम ऐसा कुछ नहीं पा सकते, जिसका चेतना के साथ दूर का भी कोई सम्बन्ध हो। तथापि हम सभी जानते हैं कि चेतना जैसी भी कोई चीज है, क्योंकि यह हम सभी में ही विद्यमान है। अतएव चेतना को प्रकृति का अंग मानना

होगा, अथवा अधिक सामान्य रूप से, यथार्थता का अंग, जिसका तात्पर्य यह है कि भौतिकी और रसायन विज्ञान के विधानों के बिल्कुल भिन्न, जैसा कि 'क्वांटम परिकल्पना' के अन्तर्गत उल्लिखित है, हमें बिलकुल भिन्न प्रकार के विधानों पर भी विचार करना होगा।'' ऐसे सिद्धान्तो में पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का भी समावेश हो सकता है, जो एक भौतिक शरीर से दूसरे में होने वाले चेतना के आवागमन का नियमन करते हैं।

इन नियमों को जानने की शुरूआत करने के लिए हम यह जान लें कि पुनर्जन्म कोई अनैसर्गिक अथवा विरोधाभासी घटना नहीं है, बल्कि एक ऐसी घटना है जो हमारे इसी जीवन-काल में, हमारे अपने शरीरों में निरन्तर घटित होते रहती है। प्रोफेसर जॉन फाईफर अपने ग्रन्थ *दि ह्यूमन ब्रेन* में लिखते हैं, ''तुम्हारे शरीर में उन अणुओं में से एक भी वह अणु नहीं है, जो सात वर्ष पहले थे।'' प्रत्येक सात वर्षों में मनुष्य का पुराना शरीर पूरी तरह नया हो जाता है। परन्तु हमारी मूल पहचान, हमारा आत्मा, नहीं बदलता। हमारे शरीर बचपन से युवावस्था तक, तदुपरान्त अधेड़ आयु तक, और तदुपरान्त बुढ़ापे तक बढ़ते रहते हैं, तथापि शरीरस्थ व्यक्ति, ''मैं'' सदैव वैसे का वैसा बना रहता है।

पुनर्जन्म, जो भौतिक शरीर से स्वतंत्र चेतन आत्मा के सिद्धान्त पर आधारित है—उस उच्चस्तरीय व्यवस्था का अंग है जो प्राणियों के एक भौतिक रूप से दूसरे भौतिक रूप में देहान्तरण का नियंत्रण करती है। चूँकि पुनर्जन्म का सम्बन्ध आत्मा से है, जो हमारे लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, अतएव हममें से प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसकी प्रासंगिकता सबसे बढ़कर है।

पुनरागमन कालातीत वैदिक साहित्य, भगवद्गीता में प्रतिपादित पुनर्जन्म के आधारभूत सिद्धान्तों की स्पष्ट व्याख्या करती है। ''ड्येड *सी स्क्रॉल्स'' (हिब्रू साहित्य के प्राचीन ग्रन्थ) से भी सहस्रों वर्ष* पुरानी *गीता,* कहीं भी उपलब्ध पुनर्जन्म की व्याख्या की अपेक्षा

पूर्णतम व्याख्या प्रस्तुत करती है। युगों तक विश्व के अनेक महानतम चिन्तक इसका अध्ययन करते आए हैं। चूँकि आध्यात्मिक ज्ञान सनातन सत्य है और यह प्रत्येक नई वैज्ञानिक परिकल्पना के साथ नहीं बदलता, अत: यह आज भी प्रासंगिक है।

हार्वर्ड के जीव-भौतिकी के वैज्ञानिक डी.पी. ड्यूपे लिखते हैं, ''यदि हम हठवाद के कारण उस मान्यता से चिपके रहें, जिसके अनुसार जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या उन प्राकृतिक नियमों के द्वारा की जा सकती है जिन्हें हम जानते हैं, तो हम अपने आप को एक अंधियारी गली में ले जायेंगे। भारत की वैदिक परम्पराओं में संजोए गये विचारों के विषय में अपने आप को मुक्त रखकर, आधुनिक वैज्ञानिक अपने कार्य को नये परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं तथा सभी वैज्ञानिक प्रयासों के लक्ष्य अर्थात् सत्य की खोज—को आगे बढ़ा सकते हैं।''

विश्वव्यापी अनिश्चितता के इस युग में यह अनिवार्य है कि हम अपने चेतन स्वरूप के वास्तविक उद्गम को समझें। हम किस तरह अपने आपको विभिन्न शरीरों और जीवन की अवस्थाओं में पाते हैं, और मृत्यु की घड़ी में हमारा गन्तव्य क्या होगा? यह महत्त्वपूर्ण ज्ञान *पुनरागमन* में विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

पहले अध्याय में सुकरात से लेकर सेलिंगर तक, विश्व के अनेक महानतम दार्शनिकों, कवियों और कलाकारों को पुनर्जन्म ने किस प्रकार गहराई से प्रभावित किया है, इसका वर्णन किया गया है। इसके बाद भगवद्गीता में प्रतिपादित पुनर्जन्म की प्रक्रिया को व्याख्यायित किया गया है, जो देहान्तरण के विषय पर सबसे प्राचीन व सर्वाधिक सम्मानित मौलिक ग्रन्थ है।

अध्याय दो में कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी *प्रभुपाद और विख्यात धर्म-मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर कार्लफ्रीड ग्राफ वॉन* ड्युर्कहाइम के बीच एक रोचक संवाद का उल्लेख है, जो यह स्पष्ट

करता है कि किस प्रकार पदार्थमय शरीर और प्रतिपदार्थमय कण अर्थात् आत्मा, एक समान नहीं हो सकते। अध्याय तीन में एक प्रसिद्ध हृदय शल्य-चिकित्सक आत्मतत्त्व के क्षेत्र में विधिवत् शोध किए जाने पर जोर देते हैं एवं श्रील प्रभुपाद सहस्त्रों वर्ष प्राचीन और आधुनिक औषधि-विज्ञान की अपेक्षा अधिक प्रभावी सूचनाओं से पुष्ट वैदिक संस्करण को उद्धृत करते हैं। वैदिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवतम् के तीन रोचक प्रसंगों से चौथा अध्याय बना है। ये विवेचन वे उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जो यह बताते हैं कि प्रकृति एवं कर्म के सुनिश्चित विधानों के अन्तर्गत विभिन्न शरीरों में आत्मा किस प्रकार देहान्तरण करता है।

पाँचवें अध्याय में श्रील प्रभुपाद के लेखों से उद्धरण हैं, जो स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं कि पुनर्जन्म के सिद्धान्त किस प्रकार हमारे दैनिक जीवन में निरंतर घटने वाली सामान्य घटनाओं और साधारण अनुभवों के माध्यम से आसानी से समझे जा सकते हैं। अगला अध्याय वर्णन करता है कि किस प्रकार पुनर्जन्म सार्वभौम एवं अच्युत न्याय-व्यवस्था को सुनिश्चित रूप से प्रस्तुत करता है, जिसमें आत्मा को कभी भी शाश्वत रूप से अभिशापित नहीं किया जाता बल्कि वैधानिक रूप से उसे स्थायी अवसर दिया जाता है, जिससे कि वह निरन्तर चलनेवाले जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा पा सके।

पुनर्जन्म के विषय में सामान्य भ्रान्त धारणाएँ और ''फैशनेबल'' विचार सातवें अध्याय का विषयवस्तु है, और अन्तिम अध्याय ''लौट कर मत आओ'' उस प्रक्रिया का प्रस्तुतीकरण है, जिसके द्वारा आत्मा पुनर्जन्म से मुक्त हो सकता है और उन लोकों में प्रवेश कर सकता है, जहाँ अन्ततः उसे भौतिक शरीर की कारागार से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। एक बार उस स्थिति को प्राप्त करके आत्मा जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से ग्रस्त इस अन्तहीन परिवर्तनशील जगत् में कभी वापस लौट कर नहीं आता।

१

पुनर्जन्म : सुकरात से सेलिंगर तक

आत्मा के लिए कभी भी न तो जन्म है, न मृत्यु। वह कभी उत्पन्न नहीं हुआ था, न होता है और न ही होगा। वह अजन्मा है, सनातन है, सदा रहने वाला और पुरातन है। वह शरीर के मारे जाने पर मारा नहीं जाता।

—भगवद्गीता २.२०

क्या जीवन जन्म से प्रारम्भ होता है, और मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है? क्या हम इसके पहले भी थे? इस प्रकार के प्रश्न सामान्यतः पूर्व के देशों के धर्मों के साथ जोड़े जाते हैं, जहाँ मनुष्य के जीवन का अस्तित्व न केवल जन्म से मृत्युपर्यन्त बल्कि लाखों युगों पर्यन्त माना जाता रहा है और जहाँ पुनर्जन्म की धारणा की स्वीकृति लगभग सर्वमान्य है। जैसा कि १९ वीं सदी के महान् जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपेनहॉवर ने एक बार कहा था, ''यदि कोई एशियाई व्यक्ति मुझसे युरोप की परिभाषा पूछे, तो मुझे यह उत्तर देने के लिए विवश होना पड़ेगा: 'यह विश्व का वह खंड है, जो इस अविश्वसनीय भ्रान्ति से ग्रस्त है कि मानव शून्य से सृजित हुआ, और यह कि उसका वर्तमान जन्म जीवन में उसका प्रथम प्रवेश है।''

दरअसल भौतिक विज्ञान ने, जो पश्चिम की प्रमुख विचारधारा है, चेतना के पूर्व-अस्तित्व और विद्यमान शरीर के पश्चात् उसकी स्थिति के विषय में किसी भी गम्भीर अथवा व्यापक रुचि का सदियों से दम घोटे रखा है। परन्तु पाश्चात्य इतिहास में सदैव ऐसे चिन्तक रहे हैं, जिन्होंने आत्मा के देहान्तरण और चेतना की अमरता को समझा और स्वीकार किया है तथा अनेक दार्शनिकों, लेखकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों एवं राजनेताओं ने इस परिकल्पना पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन किया है।

प्राचीन यूनान

प्राचीन यूनानियों में सुकरात (Socrates), पाइथेगोरस और प्लेटो की गणना उनमें की जा सकती है, जिन्होंने पुनर्जन्म को अपनी शिक्षाओं का अभिन्न अंग बनाया। जीवन की अन्तिम घड़ी में सुकरात ने कहा था, "मुझे विश्वास है कि पुनर्जन्म एक सत्य है, और यह कि जीवन का आविर्भाव मृत से होता है।" पाइथेगोरस ने दावा किया था कि उसे अपने पूर्व-जन्म अभी तक याद हैं, और प्लेटो ने अपनी प्रमुख रचनाओं में पुनर्जन्म के विषय में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किये हैं। संक्षेप में, उसका मत था कि विशुद्ध आत्मा निरपेक्ष सत्य के धरातल से विषयी इच्छा के कारण गिरता है, और तब भौतिक देह धारण करता है। पहले पतित आत्माएँ मानव-रूपों में पैदा होती हैं, जिनमें से दार्शनिक का रूप सर्वश्रेष्ठ है, जो उच्चतर ज्ञान के लिए प्रयास करता है। यदि उसका ज्ञान पूर्ण हो जाता है, तो दार्शनिक सनातन अस्तित्व को लौट सकता है। परन्तु यदि वह भौतिक विषय-वासनाओं में बुरी तरह फँस जाता है, तो वह पशु-योनियों में चला जाता है। प्लेटो का विश्वास था कि अतिभोजी पेटू और शराबी मनुष्य भावी जीवनों में गधे बन सकते हैं; हिंसक और अन्यायी लोग भेड़ियों और गिद्धों के रूप

में जन्म ले सकते हैं और सामाजिक मान्यताओं के अन्धानुगामी मधुमक्खी या चींटी बन सकते हैं। कुछ समय के पश्चात् आत्मा फिर मानव-रूप धारण करता है, और मुक्ति के लिए एक दूसरा अवसर पाता है। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि प्लेटो एवं अन्य प्राचीन यूनानी दार्शनिकों ने पुनर्जन्म का अपना ज्ञान *ओरफिज्म* (Orphism) जैसे रहस्यात्मक धर्मों अथवा भारत से प्राप्त किया था।

यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम

यहूदी धर्म और ईसाई धर्म के प्रारम्भिक इतिहास में भी सामान्य रूप से पुनर्जन्म के संकेत मिलते हैं। सम्पूर्ण कबाला (यहूदियों की मौखिक परम्परा) में अतीत और आगामी जीवनों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है, जो अनेक हिब्रू विद्वानों के मतानुसार शास्त्रों में छिपा गुप्त ज्ञान है। जोहर में, जो कबाली के प्रमुख ग्रंथों में से एक है, कहा गया है, "आत्मा को परम तत्त्व में पुनः प्रवेश करना होगा, जहाँ से उसका आविर्भाव हुआ है। परन्तु ऐसा कर पाने के लिए उसे सभी पूर्णताओं का विकास करना होगा, जिनके बीज उनके भीतर बोए हुए हैं; और यदि उन्होंने यह अवस्था एक जीवन में प्राप्त न की, तो उन्हें दूसरा जीवन प्रारम्भ करना होगा, और तब तीसरा, और इसी तरह आगे भी तब तक, जब तक कि वे वह स्थिति प्राप्त न कर लें जो उन्हें ईश्वर के साथ पुनर्मिलन के योग्य बना दे।" वैश्विक यहूदी ज्ञानकोश के अनुसार 'हसीदी' यहूदियों का भी इसी प्रकार का विश्वास है।

ईसवी की तीसरी सदी में ओरिजेन नामक धर्मशास्त्री ने, जो प्रारम्भिक ईसाई-गिरजाघर के आचार्यों में से एक थे और बाइबल के अत्यन्त निष्णात विद्वान् थे, लिखा है, "किसी पाप-प्रवृत्ति से प्रेरित होकर कुछ विशेष आत्माएँ...शरीरों में प्रवेश करती हैं—पहले, मानव-शरीरों में, और तब विवेकहीन वासनाओं के सम्पर्क के कारण मानव

जीवन के लिए नियत अवधि के पश्चात् वे पशुओं में बदल जाती हैं, जहाँ से वे वनस्पतियों...के स्तर पर गिर जाती हैं। इस स्थिति से वे फिर उन्हीं क्रमिक स्तरों में से होती हुई उबरती हैं और अपने स्वर्गीय स्थान को पुनः प्राप्त होती हैं।''

बाइबल में ही ऐसे अनेक उद्धरण हैं, जो बताते हैं कि ईसा मसीह और उनके अनुयायी पुनर्जन्म के सिद्धान्त से परिचित थे। एक बार ईसा के शिष्यों ने ओल्ड टेस्टामेन्ट की इस भविष्यवाणी के विषय में पूछा कि एलियास पृथ्वी पर पुनः प्रकट होंगे? सन्त मेथ्यू के धर्मोपदेश में हम पढ़ते हैं, ''और ईसा ने उनको उत्तर दिया, एलियास सचमुच पहले आएँगे, और सभी वस्तुओं को पुनः प्रतिष्ठापित करेंगे। परन्तु मैं तुमको बताता हूँ कि एलियास पहले ही आ चुके हैं, और तुम उसे नहीं जानते हो...तब शिष्यों की समझ में आया कि वे उनको बेप्तिस्त जॉन का वर्णन कर रहे हैं।'' दूसरे शब्दों में, ईसा ने घोषणा की कि बेप्तिस्त जॉन, जिसका सिर हैरड ने काट लिया था, पैंगम्बर एलियास का ही पुनरावतार था। एक अन्य उदाहरण में ईसा तथा उनके शिष्यों ने एक ऐसे आदमी को देखा, जो जन्म से ही अंधा था। शिष्यों ने ईसा को पूछा, ''पापी कौन है, यह आदमी या उसके मातापिता, जिससे वह अंधा जन्मा? ईसा ने उत्तर दिया, पाप भले किसी ने भी किया हो, यह भगवान् के कार्य को दिखाने का अवसर है। उसके बाद ईसा ने उस आदमी को अच्छा कर दिया। अब यदि वह आदमी अपने स्वयं के पाप के कारण अंधा जन्मा होता, तो वह पाप उसने अपने जन्म से पहले, अर्थात् अपने पूर्वजन्म में किया होगा और इस विचार के प्रति ईसा ने कोई विरोध प्रदर्शित नहीं किया।

कुरान का कथन है, ''और तुम मृत थे, तथा वे (ईश्वर) तुम्हें जीवन में वापस ले आए, और वे तुम्हें मृत्यु देंगे, और पुनः जीवित करेंगे, और अन्त में तुम्हें अपने में समेट लेंगे।'' इस्लाम के

अनुयायियों में सूफी लोग विशेष रूप से विश्वास करते हैं कि मृत्यु से कोई क्षति नहीं होती, क्योंकि अमर आत्मा विविध शरीरों से निरन्तर गुजरता रहता है। प्रसिद्ध सूफी कवि, जलालुद्दीन रूमी ने लिखा है :

मैं खनिज के रूप में मरा, और पौधा बन गया,
मैं पौधे के रूप में मरा, और पशु के रूप में आया,
मैं पशु के रूप में मरा, और आदमी बन गया
मैं क्यों डरूँ? मृत्यु से मुझे घाटा ही कब हुआ?

भारतवर्ष का कालातीत वेद-वाङ्मय पुष्टि करता है कि भौतिक प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने के अनुसार आत्मा ८४,००,००० रूपों में से एक को ग्रहण करता है, और एक बार किसी विशेष योनी में प्रकट होने पर नीचे से ऊपर की ओर क्रमिक जीव-रूपों में स्वयं विकसित होता रहता है और अन्त में मानव-योनि प्राप्त करता है।

इस प्रकार, पश्चिम के सभी प्रमुख धर्मों—यहूदी, ईसाई और इस्लाम—के उपदेशों के ताने-बाने में पुनर्जन्म के निश्चित सूत्र हैं, यद्यपि इन मतवादों के आधिकारिक संरक्षक इनकी अनदेखी या इनसे इनकार करते हैं।

मध्ययुग और पुनर्जागरण

ऐसी परिस्थितियों में, जो आज भी रहस्य से घिरी हुई हैं, बैजन्टाइन सम्राट् जस्टीनियन ने ५५३ ई. में रोमन कैथोलिक चर्च में आत्मा के पूर्व-अस्तित्व सम्बंधी उपदेशों पर रोक लगा दी थी। उस युग में चर्च के अनेक लेख नष्ट कर दिये गये, और आज अनेक विद्वानों का विश्वास है कि शास्त्रों से पुनर्जन्म के सन्दर्भ निकाल दिये गये। यद्यपि चर्च ने नॉस्टिक पन्थों (Gnostic Sects)को कठोरता से दण्डित किया, तथापि इन्होंने पश्चिम में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को

किसी न किसी तरह जीवित रखा। (Gnostic - यह शब्द यूनानी भाषा के शब्द Gnosis से निकला है, जिसका अर्थ है, 'ज्ञान')

पुनर्जागरण के युग में पुनर्जन्म के प्रति लोक-रुचि एक नये प्रकार से पल्लवित हुई। इस पुनरुज्जीवन के लिए नामवर लोगों में से एक था जीओरदानो ब्रूनो, जो इटली का एक प्रमुख दार्शनिक और कवि था और जिसको उसके पुनर्जन्म विषयक उपदेशों के कारण अंततः धार्मिक अदालत द्वारा चिता पर जीवित जला कर मार देने का दण्ड दे दिया गया। अपने ऊपर लगाये गये आरोपों के अन्तिम उत्तरों में उसने विद्रोहपूर्वक घोषणा की कि, "आत्मा शरीर नहीं है," और यह कि, "वह एक शरीर में हो सकता है या दूसरे शरीर में, और एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण कर सकता है।"

चर्च के द्वारा किये गये इस प्रकार के दमन के कारण पुनर्जन्म सम्बंधी उपदेश तब गहरे रूप में भूमिगत हो गये, किन्तु वे यूरोप के गुह्य समाजों जैसे रोसिक्रूशियनों, फ्रीमेसनों, केबालिस्टों और अन्यों में बचे रहे।

नव-आलोक का युग

नव-आलोक के युग में यूरोप के बुद्धिजीवी वर्ग चर्च द्वारा लादी गई पाबंदियों से अपने आपको मुक्त करने लगे। महान् दार्शनिक वॉलटैरने लिखा कि "पुर्नजन्म का सिद्धान्त न तो बेहूदा है और न ही व्यर्थ," और "एक बार जन्म लेने की अपेक्षा दो बार जन्म लेना अधिक आश्चर्यजनक नहीं है।"

किसी को भी यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि जब इस विषय पर लोक-रुचि एटलांटिक को पार करके अमरीका पहुँची तब अमरीका के अनेक प्रतिष्ठापक नेता पुनर्जन्म के विचार से मुग्ध हो उठे

और अन्ततः उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करते हुए बेंजामिन फ्रेंकलिन ने लिखा, "इस संसार में अपना अस्तित्व पाकर, मैं विश्वास करता हूँ कि मैं किसी न किसी रूप में सदा रहूँगा।"

सन् १८१४ में, भूतपूर्व अमरीकी राष्ट्रपति जॉन एडेम्स ने, जो हिन्दू-धार्मिक किताबों का अध्ययन किया करते थे, एक अन्य भूतपूर्व राष्ट्रपति, "मॉन्टीसेलो के सन्त," थॉमस जेफरसन को पुनर्जन्म के सिद्धान्त के विषय में लिखा था। एडम्स ने लिखा, "परम प्रभु के विरुद्ध विद्रोह करने पर कुछ आत्माएँ घोर अन्धकार के गर्त में डाल दी गई थीं। इसके बाद उनको कारागार से मुक्त किया गया, और उन्हें पृथ्वी पर आने की और अपने-अपने पद और चरित्र के अनुरूप विभिन्न प्रकार के पशुओं, सरीसृपों, पक्षियों, हिंसक प्राणियों और मनुष्यों के रूप में, यहाँ तक कि वनस्पतियों और खनिजों में भी अपनी परीवेक्षण अवधि पूरी करने के लिए देहान्तरण की अनुमति दे दी गई। यदि वे अपने को दूषित किये बिना सभी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर सकें, तो उन्हें गाय और आदमी होने की अनुमति दे दी गई। यदि मनुष्य के रूप में उनका व्यवहार अच्छा रहा...तो उन्हें स्वर्ग में उनके मूल पद और सुख को वापस लौटा दिया गया।"

यूरोप में नेपोलियन अपने सेनापतियों से यह कहने में बहुत रुचि लेता था कि पूर्वजन्म में वह महान् सम्राट् चार्ल्स था। जर्मनी के महानतम कवियों में से एक, जोहान वोल्फगंग वॉन गोइथे का भी पुनर्जन्म में विश्वास था, और सम्भव है कि यह विचार उसे भारतीय दर्शन के अध्ययन से मिला हो। नाटककार और वैज्ञानिक के रूप में विख्यात गोइथे ने भी एक बार कहा था, "मुझे विश्वास है कि मैं सहस्रों बार यहाँ पहले रह चुका हूँ जैसा कि इस समय हूँ, और मैं सहस्रों बार यहाँ लौटने की आशा करता हूँ।"

अध्यात्मवाद

इमर्सन, व्हिटमन और थोरो सहित अमरीकी अध्यात्मवादियों को भी भारतीय दर्शन एवं पुनर्जन्म में तीव्र रुचि थी। इमर्सन ने लिखा है, ''विश्व का यह एक रहस्य है कि यहाँ सभी वस्तुएँ स्थिर रहती हैं और मरती नहीं, परन्तु कुछ समय के लिए आँखों से ओझल हो जाती हैं, और बाद में फिर से लौट आती हैं...मरता कुछ भी नहीं। मनुष्य मरने का बहाना करते हैं, बनावटी अन्त्येष्टि और शोकपूर्ण मरण-समाचारों को सह लेते हैं, और वे भले-चंगे, किसी नये विचित्र छद्म-वेश में खड़े अपनी खिड़की से बाहर झाँकते हैं।'' इमर्सन ने अपने पुस्तकालय की अनेक प्राचीन भारतीय दर्शन की पुस्तकों में से एक, कठोपनिषद् से उद्धृत किया है, ''आत्मा जन्म नहीं लेता, यह मरता भी नहीं है, न यह किसी से उत्पन्न हुआ...अजन्मा है, सनातन है, यह मारा नहीं जाता है, यद्यपि शरीर मारा जाता है।''

वाल्डैन पौंड के दार्शनिक थोरो ने लिखा है, ''मैं जहाँ तक पीछे याद कर सकता हूँ, मैंने किसी पूर्व-अस्तित्व के अनुभवों को अनजाने ही सन्दर्भित किया है।'' १९२६ ई. में खोजी गई "The Transmigration of the Seven Brahmans" (सात ब्राह्मणों का पुनर्जन्म), नामक एक पांडुलिपि से पुनर्जन्म में थोरो की गहरी रुचि का पता चलता है। यह छोटी पुस्तक प्राचीन संस्कृत इतिहास से पुनर्जन्म की एक कहानी का अंग्रेजी अनुवाद है। देहान्तरण की घटना का सम्बंध उन सात ऋषियों के जीवन से है, जिन्होंने शिकारियों, राजकुमारों और पशुओं के रूप में उत्तरोत्तर पुनर्जन्म ग्रहण किया था।

और वॉल्ट व्हिटमन अपनी कविता ''Song of Myself'' (*सोंग ऑफ मायसेल्फ*) में लिखते हैं :

मैं जानता हूँ, मैं अमर्त्य हूँ...
हमने अभी तक बितायी हैं
खरबों शीत और ग्रीष्म ऋतुएँ,
खरबों अभी आगे आने को हैं, और
खरबों उनके भी आगे आने को हैं।

फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक ओनोरे बालजैक ने पुनर्जन्म के विषय पर एक पूरा उपन्यास 'Seraphita' (सेरफिता) लिखा है, जिसमें बालजैक कहता है, ''सभी मनुष्य एक पूर्व-जीवन से गुजरते हैं...कौन जानता है कि स्वर्ग के उत्तराधिकारी को कितने मांसल रूपों को धारण करने पड़ें कि इसके पहले वह शान्ति एवं एकान्त के उस मूल्य को समझ सके, जिसके तारों से आलोकित मैदान आध्यात्मिक विश्वों के झरोखे मात्र हैं।''

डेविड कॉपरफील्ड में, चार्ल्स डिकेन्स ने पूर्व-जन्मों (''पहले कहीं देखा है''—deja-vu) की स्मृतियों पर आधारित एक अनुभव की छानबीन की, ''हम सभी को एक अनुभव का एहसास होता है, जो समय-समय पर हम सभी को अभिभूत करता है, कि हम जो कुछ कह रहे और कर रहे हैं, वह किसी दूर अतीत में पहले कहा और किया जा चुका है—कि हम सभी, युगों पूर्व, उन्हीं चेहरों, वस्तुओं और परिस्थितियों से घिरे रह चुके हैं...''

और रूस में, विख्यात काउन्ट लियो टॉल्सटॉय ने लिखा, ''जिस प्रकार हम अपने वर्तमान जीवन में सहस्रों स्वप्नों के बीच रहते हैं, वैसे ही हमारा वर्तमान जीवन कई सहस्रों जीवनों में से केवल एक है जिसमें हम एक अन्य, अधिक सत्य जीवन से प्रवेश करते हैं...और तब मृत्यु के बाद वापस लौट जाते हैं। हमारा जीवन उस अधिक सत्य जीवन के स्वप्नों में से केवल एक है, और इसलिए यह अनन्त प्रक्रिया उस अन्त तक, उस सत्य जीवन, ईश्वरीय जीवन में पहुँचने तक चलती रहती है।''

आधुनिक युग

जैसे ही हम बीसवीं सदी में प्रवेश करते हैं, हम देखते हैं कि पुनर्जन्म के विचार ने पश्चिम के अत्यन्त प्रभावी कलाकारों में से एक, पॉल गौगान को आकृष्ट किया, जिसने ताहिती (प्रशांत महासागर में स्थित एक द्वीप) में अपने अन्तिम दिनों में लिखा कि जब भौतिक शरीर-संरचना विखंडित हो जाती है, ''आत्मा जीवित रहता है।'' और तब वह ''पाप और पुण्य के अनुसार नीचे गिरते हुए अथवा ऊपर उठते हुए दूसरा शरीर धारण करता है।'' इस कलाकार का विश्वास था कि सतत पुनर्जन्म का विचार पश्चिम को सबसे पहले पाइथेगोरस ने सिखाया, जिसने इसे प्राचीन भारत के ऋषियों से सीखा था।

अमरीका के मोटर-कार उद्योग के समृद्ध उद्योगपति हेनरी फोर्ड ने एक बार किसी समाचार-पत्र के संवाददाता को भेंट में कहा था, ''जब मैं छब्बीस साल का था, तब मैंने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया था।'' फोर्ड ने बताया, ''विलक्षण प्रतिभा एक अनुभव है। कुछ लोग सोचते हैं कि यह एक ईश्वर प्रदत्त उपहार या क्षमता है, परन्तु यह अनेक जन्मों में संसिद्ध अनुभवों का फल है।'' इसी प्रकार, अमरीकी सेनापति जॉर्ज एस. पैटन का विश्वास था कि उसने अपने सैन्य कौशलों को पुरातन युद्ध-क्षेत्रों से प्राप्त किया था।

आयरलैंड के उपन्यासकार और कवि जेम्स जॉयस की कृति, *यूलीसिस* में पुनर्जन्म बारम्बार दोहराये जाने वाला विषय है। इस उपन्यास के एक प्रसिद्ध प्रकरण में जॉयस का नायक, श्रीमान् ब्लूम, अपनी पत्नी से कहता है, ''कुछ लोगों का विश्वास है कि हम मृत्यु के बाद एक दूसरे शरीर में जीवित रहते हैं, जिसमें हम पहले भी जिये थे। वे इसे पुनर्जन्म कहते हैं। हम सब सहस्रों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर अथवा किसी अन्य ग्रह पर रहते थे। वे कहते हैं कि हम सब इसे भूल गये हैं। कुछ कहते हैं कि उन्हें अपने पूर्व जन्मों की याद है।''

जैक लंडन ने पुनर्जन्म को अपने उपन्यास *दि स्टार रोवर* का प्रमुख विषय बनाया, जिसका प्रमुख पात्र कहता है, ''मैंने अपना जीवन तभी प्रारम्भ नहीं किया जब मैंने जन्म लिया, न ही जब मैंने गर्भ में प्रवेश किया। मैं अनेक, असंख्य युगों में बढ़ता और विकसित होता रहा हूँ...मेरी सारी पूर्व-आत्माओं की ध्वनियाँ, प्रतिध्वनियाँ और प्रेरणाएँ मुझ में हैं...ओह, मैं असंख्य बार पुनः पैदा होऊँगा, तब भी मेरे इर्द-गिर्द के मूर्ख लोग सोचते हैं कि एक रस्सी से मेरा गला घोट कर वे मेरा अन्त कर देंगे।''

आध्यात्मिक सत्य की खोज विषयक अपने उत्कृष्ट श्रेणी के उपन्यास, 'सिद्धार्थ' में नोबेल पुरस्कार विजेता हरमन हेस ने लिखा, ''उसने इन सब रूपों और चेहरों को सहस्रों सम्बंधों में परस्पर बंधे हुए देखा...उनमें से कोई नहीं मरा, वे केवल बदल गये, सदा जन्मते रहे; निरन्तर उन्हें नया चेहरा मिलता रहा; केवल काल ही था जो एक चेहरे और दूसरे चेहरे के बीच खड़ा था।''

अनेक वैज्ञानिकों और मनोवेत्ताओं का भी पुनर्जन्म में विश्वास रहा है। महानतम् आधुनिक मनोवैज्ञानिकों में से एक कार्ल जंग ने स्व तथा चेतना के गूढ़तम् रहस्यों को समझने के लिए अनेक जन्म लेने वाले शाश्वत आत्मा के विचार का साधन के रूप में उपयोग किया। जंग ने कहा, ''मैं अच्छी तरह कल्पना कर सकता हूँ कि मैं विगत शताब्दियों में जीवित रहा हूँगा और वहाँ मैंने उन प्रश्नों का सामना किया होगा जिनका उत्तर मैं तब नहीं दे सका था, जिससे मुझे फिर जन्म लेना पड़ा क्योंकि मैं उस काम को पूरा नहीं कर सका जो मुझे सौंपा गया था।''

ब्रिटिश जीवविज्ञानी, थॉमस हक्सले ने बताया कि, ''देहान्तरण का सिद्धान्त'' मनुष्य को ब्रह्माण्ड की कार्यपद्धति को समुचित रूप से समझाने वाला युक्तिसंगत साधन है। उसने चेतावनी दी : केवल वे ही

जो जल्दबाजी से विचार करते हैं, इसे अन्तर्निहित तर्कहीनता के आधार पर अस्वीकृत करेंगे।''

मनोविश्लेषण-विज्ञान और मानव-विकास के क्षेत्र में एक जाना-माना व्यक्ति, अमरीकी मनोविश्लेषक, एरिक एरिकसन, दृढ़ विश्वास अभिव्यक्त करता है कि पुनर्जन्म प्रत्येक मानव की विश्वास पद्धति के केन्द्रबिन्दु तक जाता है। उसने लिखा है, ''हमें इसका सामना करना चाहिए : कोई भी विवेकी व्यक्ति अपने ही अन्दर अपने अस्तित्व को यह माने बिना कि वह सदैव जीवित था और सदैव जीवित रहेगा, देख नहीं सकता।''

आधुनिक युग के अग्रणी राजनेता और अहिंसा के दूत, महात्मा गाँधी ने एक बार बताया था कि किस प्रकार पुनर्जन्म की व्यावहारिक समझदारी ने उन्हें विश्व-शान्ति के स्वप्न को पूर्ण करने के लिए आशा प्रदान की थी। गाँधी ने कहा था, ''मैं एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच स्थायी शत्रुता की बात नहीं सोच सकता, और क्योंकि मैं पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखता हूँ, मैं इस आशा को लेकर जीवित हूँ कि यदि इस जन्म में नहीं तो किसी दूसरे जन्म में मैं समूची मानवता का मैत्रीपूर्वक गले लगा सकूंगा।''

अपनी सुप्रसिद्ध लघु कथाओं में से एक में जे.डी. सेलिंगर 'टेडी' को लाता है, जो समय से पूर्व परिपक्व, युवा बालक है, जो अपने पूर्व-जन्मों के अनुभवों को याद करता है, और उनके बारे में बिना झिझक बातें करता है। ''इतनी मूर्खता लगती है यह! बात सिर्फ इतनी सी है कि जब आप मरते हैं, तो केवल अपने शरीर से बाहर निकल जाते हैं। भगवान् की कसम! हममें से प्रत्येक ने हजारों बार यह किया है। चूँकि उन्हें याद नहीं है, इसलिए इसका यह मतलब नहीं निकाला जा सकता कि उन्होंने ऐसा किया नहीं।''

जोनाथन लिविंस्टन सीगल, इसी नाम के उपन्यास के नायक का

वर्णन इसके रचयिता रिचर्ड बाख ने इस प्रकार किया है, ''वह तेजस्वी सूक्ष्म ज्वाला जो हम सबके भीतर जलती है'' अनेक पुनर्जन्मों की शृंखला से गुजरती है, जो उसे पृथ्वी से स्वर्ग-लोक तक ले जाती है, और फिर वापस ले आती है, जिससे वह कम भाग्यशाली व्यक्तियों को प्रकाश दे सके। जोनाथन के गुरुओं में से एक पूछता है, ''पहली बार यह विचार करने से पूर्व कि जीवन में खाने, लड़ने अथवा समूह में धाक जमाने से बढ़कर भी कुछ है, क्या आपने कभी यह सोचा है कि हम कितने जीवनों से गुजर चुके होंगे? एक हजार जीवन, जोन, दस हजार! और तब दूसरे सौ जीवन, जब तक हम यह सीखना प्रारम्भ नहीं करते कि पूर्णता नाम की कोई वस्तु है, और पुनः सौ-जीवन जिससे हम यह विचार पा सकें कि जीवन का उद्देश्य पूर्णता की उपलब्धि पाना, और उसे प्रकट करना है।''

नोबेल पुरस्कार विजेता ईसाक बेशेविस सिंगर पूर्व-जन्मों, पुनर्जन्म और आत्मा की अमरता की बातें अपनी अनुपम लघु कहानियों में अक्सर करता है। ''मृत्यु होती ही नहीं। यदि प्रत्येक वस्तु ईश्वर का ही अंश है, तो मृत्यु हो ही कैसे सकती है? आत्मा तो कभी नहीं मरता, और शरीर कभी सचमुच जीवित होता ही नहीं है।''

अंग्रेज राजकवि जॉन मेसफील्ड गत और भावी जीवनों के विषय में अपनी विख्यात कविता में लिखता है—

मेरा मत है कि जब कोई आदमी मरता है
उसका आत्मा पुनः पृथ्वी पर लौटता है;
किसी नये मांसल छद्म-वेश में सजकर
कोई दूसरी माँ उसे जन्म देती है,
दृढ़तर अंगों और अधिक चेतन मस्तिष्क के साथ
वही पुरातन आत्मा मार्ग पर पुनः अग्रसर हो जाता है।

संगीतकार, गीतकार और जाने-माने भूतपूर्व बीटल जॉर्ज हेरीसन

का पुनर्जन्म विषयक गंभीर चिन्तन परस्पर मानव-सम्बंधों पर उसके निजी विचारों में प्रकट होता है। "मित्र वे आत्माएँ हैं जो दूसरे जीवनों में हमारे परिचित रहे हैं तथा हम एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। मित्रों के बारे में मैं यही अनुभव करता हूँ। यदि मैंने एक दिन के लिए भी उन्हें जाना हो, तो कोई बात नहीं। मैं उन्हें दो वर्षों तक जानने के लिए प्रतीक्षा नहीं करूँगा, क्योंकि किसी न किसी तरह, हम पहले कहीं न कहीं अवश्य मिल चुके होंगे।"

पश्चिम में सामान्य जनता और बुद्धिजीवियों का ध्यान एक बार फिर पुनर्जन्म की ओर आकर्षित हो रहा है। फिल्में, उपन्यास, लोकप्रिय गीत और पत्रिकाओं में अब पुनर्जन्म की चर्चा बार-बार होती है तथा यह चर्चा निरन्तर बढ़ रही है। लाखों पश्चिमी लोग, जिनकी संख्या डेढ़ अरब से भी अधिक है, उन लोगों की श्रेणी में तेजी से आ रहे हैं, जिनमें हिन्दू, बौद्ध, ताओवादी एवं अन्य धर्मावलम्बी सम्मिलित हैं, जो परम्परा से यह मानते आये हैं कि जीवन जन्म के साथ प्रारम्भ नहीं होता, अथवा मृत्यु के साथ उसका अन्त नहीं हो जाता। परन्तु साधारण जिज्ञासा अथवा विश्वास पर्याप्त नहीं है। पुनर्जन्म के विज्ञान को पूरी तरह समझने की दिशा में यह पहला चरण मात्र है, जिसमें दु:खमय जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होने की विधि का ज्ञान शामिल है।

भगवद्गीता : पुनर्जन्म पर कालातीत स्रोत-ग्रन्थ

बहुत से पश्चिमी लोग पुनर्जन्म को और अधिक गहराई से समझने के उद्देश्य से गत और भावी जीवनों के ज्ञान के मूल स्रोतों की ओर उन्मुख हो रहे हैं। सम्प्रति उपलब्ध सभी साहित्यों में भारतवर्ष के

संस्कृत भाषा में रचित वेद पृथ्वी पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं, और पुनर्जन्म विज्ञान की सम्पूर्ण और तार्किक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—वे शिक्षाएँ जिन्होंने पाँच सहस्र से भी अधिक वर्षों से अपने सार्वलौकिक प्रभाव और व्यावहारिकता को बनाये रखा है।

जो वैदिक ज्ञान और उपनिषदों का सार है, उस भगवद्गीता में पुनर्जन्म विषयक अत्यन्त मौलिक जानकारी मिलती है। पचास शताब्दी पूर्व पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मित्र एवं शिष्य अर्जुन को उत्तरी भारत के एक रणक्षेत्र में गीता का उपदेश दिया था। पुनर्जन्म पर विवेचन के लिए युद्ध-भूमि आदर्श स्थान होती है, क्योंकि मनुष्य युद्ध में होने के कारण जीवन, मृत्यु और जीवनेत्तर सम्बंधी निर्णायक प्रश्नों का सीधा सामना करता है।

जैसे ही श्रीकृष्ण आत्मा की अमरता के बारे में बोलना प्रारम्भ करते हैं, वे अर्जुन से कहते हैं, "कभी भी ऐसा समय नहीं था, जब मैं नहीं था, तुम न थे, न ये सब राजा थे, और न ही भविष्य में हममें से किसी का होना रुक जायेगा।" गीता आगे निर्देश देती है, "यह जान लो कि जो इस समूचे शरीर में व्याप्त है, वह अविनाशी है। उस अविनाशी आत्मा का कोई भी विनाश नहीं कर सकता।" आत्मा, जिसकी चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं, इतना सूक्ष्म है कि यह सीमित मानव-बुद्धि और इन्द्रियों से तुरन्त इसकी सत्यता सिद्ध कर पाने योग्य नहीं है। अतएव हर मनुष्य आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाएगा। श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं, "कुछ लोग आत्मा को आश्चर्यवत् देखते हैं, कुछ लोग इसका आश्चर्यवत् रूप में वर्णन करते हैं, कुछ इसे आश्चर्यवत् रूप में सुनते हैं, अन्य लोग इसके विषय में सुनने के बाद भी बिल्कुल नहीं समझ पाते।"

आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना मात्र श्रद्धा की बात नहीं है। भगवद्गीता हमारी इन्द्रियों और तर्क के साक्ष्य पर विचार करने

को प्रेरित करती है, जिससे हम इसकी शिक्षाओं को विवेकपूर्ण विश्वास की कतिपय मात्रा के साथ स्वीकार कर सकें, न कि आँख मूंद कर असंगत मतवाद के रूप में।

पुनर्जन्म को तब तक समझ पाना असम्भव है, जब तक हम वास्तविक 'स्व' (आत्मा) और शरीर में भेद को नहीं जानते। गीता नीचे दिए गये उदाहरण के द्वारा हमें आत्मा के स्वरूप को समझने में सहायता करती है—"जैसे अकेला सूर्य समूचे ब्रह्मांण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार शरीरस्थ जीवात्मा चेतना के द्वारा समूचे शरीर को प्रकाशित करता है।"

शरीर में आत्मा की उपस्थिति के लिए चेतना ठोस साक्ष्य है। मेघों से आच्छादित दिन में सूर्य भले ही दिखाई न पड़े, परन्तु उसके प्रकाश की उपस्थिति के कारण हम जानते हैं कि वह आकाश में है। इसी प्रकार हम आत्मा का सीधा साक्षात्कार भले ही न कर सकें, किन्तु चेतना की उपस्थिति से हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वह (आत्मा) वहाँ है। चेतना के न होने पर शरीर मात्र निर्जीव पदार्थ का पिण्ड रह जाता है। केवल चेतना की उपस्थिति से ही निर्जीव पदार्थ के इस पिण्ड में श्वास लेने, बोलने, प्रेम करने और डरने की क्रिया का संचार होता है। सार यह है कि शरीर आत्मा का वाहन है, जिसके द्वारा वह अपनी असंख्य भौतिक इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। गीता बताती है कि जीवात्मा शरीर में "भौतिक शक्ति से निर्मित यंत्र पर स्थित है।" आत्मा मिथ्या ही शरीर के साथ पहचान कर लेता है और जीवन की विविध धारणाओं को एक शरीर से दूसरे शरीर तक ठीक उसी प्रकार ले जाता है, जैसे वायु सुगन्ध को ले जाती है। जिस प्रकार चालक के बिना कोई मोटरगाड़ी नहीं चल सकती, उसी प्रकार भौतिक देह आत्मा की उपस्थिति के बिना काम नहीं कर सकती।

ज्यों-ज्यों आदमी की आयु बढ़ती है, त्यों-त्यों चेतन आत्मा और

भौतिक शरीर का भेद अधिक स्पष्ट होने लगता है। अपने जीवन-काल में, व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि उसका शरीर निरन्तर बदल रहा है। वह टिकता नहीं, और समय यह सिद्ध कर देता है कि बालक स्वल्पायु है। शरीर किसी काल-विशेष में अस्तित्व में आता है, बढ़ता है, परिपक्व होता है, सन्तान पैदा करता है, और शनैः शनैः क्षीण होता है और मर जाता है। इस प्रकार भौतिक शरीर मिथ्या है, क्योंकि वह नियत समय पर नष्ट हो जाएगा। जैसे गीता व्याख्या करती है, "असत् का अस्तित्व नहीं होता।" परन्तु भौतिक शरीर के इन परिवर्तनों के बावजूद, चेतना, जो अन्तस्थ आत्मा का परिचायक चिह्न है, नहीं बदलती। ("सत् में कभी परिवर्तन नहीं होता।") इसलिए, हम यह तर्कसंगत निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि चेतना में स्थायित्व का सहज गुण है, जिससे वह शरीर के नष्ट होने पर जीवित रह सकती है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "आत्मा के लिए किसी समय भी न तो जन्म है, न मृत्यु...शरीर के मारे जाने पर वह मारा नहीं जाता।"

किन्तु यदि आत्मा "शरीर के मारे जाने पर नहीं मारा जाता," तब उसका होता क्या है? भगवद्गीता में उत्तर दिया गया है कि आत्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। यही पुनर्जन्म है। कुछ लोगों के लिए इस अवधारणा को स्वीकार करना कठिन हो सकता है, किन्तु यह प्राकृतिक प्रक्रिया है और गीता हमें इस धारणा को समझने में सहायता के लिए तर्कसंगत उदाहरण देती है: "जिस प्रकार शरीरस्थ आत्मा इस शरीर में बचपन से यौवन में, और यौवन से बुढ़ापे में निरन्तर आगे बढ़ता रहता है, उसी प्रकार मृत्यु हो जाने पर वह किसी दूसरे शरीर में प्रवेश पाता है। धीर व्यक्ति इस परिवर्तन से भ्रमित नहीं होता।"

दूसरे शब्दों में, मनुष्य एक जीवन-काल में भी पुनर्जन्म ग्रहण करता है। कोई भी जीवविज्ञानी बता सकता है कि शरीर की कोशिकाएँ निरन्तर मरती रहती हैं और नई कोशिकाएँ उनका स्थान

लेती रहती हैं। दूसरे शब्दों में, हममें से प्रत्येक व्यक्ति इसी जीवन में कई विविध शरीर धारण करता है। किसी वयस्क का शरीर उसके अपने ही शिशु-शरीर से पूरी तरह भिन्न होता है, तथापि शारीरिक परिवर्तनों के बावजूद अन्तस्थ पुरुष वही बना रहता है। लगभग ऐसा ही मृत्यु के समय होता है, जब आत्मा शरीर के अन्तिम परिवर्तन को प्राप्त करता है। गीता कहती है, "जिस प्रकार व्यक्ति अपने पुराने वस्त्रों को उतार कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा जीर्ण और निरर्थक शरीर को त्याग कर नए भौतिक शरीर ग्रहण करता है।" इस प्रकार आत्मा जन्म और मृत्यु के अन्तहीन चक्र में उलझा रहता है। भगवान् अर्जुन से कहते हैं, "जिसने जन्म ग्रहण किया है, उसकी मृत्यु सुनिश्चित है, और मरने के पश्चात् उसका जन्म निश्चित है।"

वेदों के अनुसार जीवों की ८४,००,००० योनियाँ हैं। अणु-जीवों से प्रारम्भ होकर मत्स्य, वनस्पति, कीट, सरीसृप, पक्षियों एवं पशुओं तक ऊपर उठती हुई जीवात्माएँ मनुष्यों और देवताओं तक अपनी भौतिक इच्छाओं के अनुसार इन योनियों में निरन्तर जन्म लेती रहती हैं।

मन वह यंत्र है जो देहान्तरण का नियंत्रण करता है और नवीन तथा नवीनतर शरीरों की ओर आत्मा को प्रेरित करता है। गीता व्याख्या करती है, "जिस भाव का स्मरण करता हुआ मनुष्य शरीर को त्यागता है, उसी भाव को वह निश्चित रूप से [अपने अगले जीवन में] प्राप्त होगा।" जो कुछ भी हमने जीवन भर सोचा और किया है, उसका प्रभाव मन पर पड़ता है, और इन प्रभावों का समुच्चय मृत्यु के समय हमारे अन्तिम विचारों को प्रभावित करता है। इन विचारों की गुणवत्ता के अनुरूप भौतिक प्रकृति हमें उपयुक्त शरीर देती है। इसलिए, जो शरीर हमें अभी प्राप्त है, वह हमारी पिछली मृत्यु के समय की चेतना की अभिव्यक्ति है।

"इस प्रकार जीवात्मा नये स्थूल शरीर को ग्रहण करता है, जिससे वह विशेष प्रकार की आँख, कान, जीभ, नाक और त्वचा प्राप्त करता

है, जो मन के साथ जुड़े होते हैं। इस प्रकार वह किन्हीं विशिष्ट इन्द्रिय-भोगों को भोगता है," यह गीता की व्याख्या है। इसके साथ ही पुनर्जन्म का मार्ग मनुष्य को सदैव ऊपर की ओर नहीं ले जाता। यह निश्चित नहीं है कि कोई मनुष्य अगले जीवन में मनुष्य-जन्म को ही प्राप्त करे। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति कुत्ते की मानसिकता को लेकर मरता है, तब वह अगले जन्म में कुत्ते की ही आँखें, कान, नाक, इत्यादि प्राप्त करेगा और इस प्रकार वह कुत्ते को उपलब्ध विशिष्ट सुख भोग सकेगा। भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे अभागे आत्मा की नियति की पुष्टि यह कहते हुए करते हैं कि "यदि कोई तामसिक मन:स्थिति में मरता है, तो वह पशु-योनि में जन्म लेता है।"

भगवद्गीता के अनुसार, वे मानव जो अपने अभौतिक, उच्च स्वरूप के विषय में जिज्ञासा नहीं करते, उन्हें कर्म-विधान के वशीभूत होकर कभी मानव-रूपों में, कभी पशु-रूपों में तो कभी वनस्पति अथवा कृमि-रूपों में जन्म, मृत्यु तथा पुनर्जन्म के चक्र में पड़े रहने को बाध्य होना पड़ता है।

भौतिक संसार में हमारा अस्तित्व इस जन्म और पूर्व-जन्मों की नानाविध कर्मिक प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। मानव-शरीर ही एकमात्र बचाव का मार्ग है जिससे भौतिकता में बँधा हुआ आत्मा बच निकल सकता है। मानव-रूप का समुचित उपयोग करके जीवन की सभी समस्याओं (जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि) का समाधान किया जा सकता है और पुनर्जन्म का अन्तहीन चक्र तोड़ा जा सकता है। किन्तु, यदि आत्मा मानव-धरातल तक विकास करके केवल इन्द्रियसुखों के कार्यकलापों में व्यस्त रहकर जीवन को नष्ट करता है, तो वह इसी वर्तमान जीवन में आसानी से इतने कर्म संचित कर लेता है कि वह आगामी सहस्रों वर्षों तक जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसा रहे। और पक्का नहीं कि ये सभी जन्म मनुष्य के रूप में हों।

भगवान् कृष्ण कहते हैं, "मूर्ख लोग यह नहीं समझ सकते कि जीवात्मा इस शरीर से कैसे छुटकारा पा सकता है, न ही वे यह समझ पाते हैं कि प्रकृति के गुणों से सम्मोहित रह कर वह किस प्रकार के शरीर का भोग करता है। परन्तु वह, जिसकी आँखें ज्ञान में दक्ष हो चुकी हैं, यह सब देख सकता है। अभ्यास करने वाले अध्यात्मवादी, जो आत्म-साक्षात्कार में स्थित हैं, यह सब स्पष्ट देख सकते हैं। परन्तु जिनके मन का विकास नहीं हुआ है और जो आत्म-साक्षात्कार में स्थित नहीं हैं, वे जो कुछ घट रहा है, उसे प्रयास करने पर भी देख नहीं सकते।"

मानव-शरीर को प्राप्त भाग्यशाली आत्मा के लिए उचित है कि वह पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को समझने के लिए और जन्म-मृत्यु की पुनरावृत्ति से मुक्त होने के लिए, आत्म-साक्षात्कार के प्रति गम्भीरता से प्रयत्न करे। ऐसा न करना हमारे लिए श्रेयकर नहीं है।

२

शरीरों का परिवर्तन

सन १९७४ में, पश्चिमी जर्मनी में फ्रेंकफर्ट के समीप ग्रामीण क्षेत्र में स्थित इस्कॉन केन्द्र पर कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का प्रोफेसर कार्लफ्रीड ग्राफ वॉन ड्युर्कहाइम के साथ निम्नलिखित वार्तालाप हुआ। प्रो. ड्युर्कहाइम, एक विख्यात धर्म-मनोविज्ञानी और "डेली लाइफ ऐज स्पिरिच्युल एक्सरसाइज" (Daily Life as Spiritual Exercise) के प्रणेता, विश्लेषण-मनोविज्ञान में पीएच.डी. उपाधिधारी हैं और वे चेतनाशक्ति के मनोविज्ञान के बारे में पश्चिमी तथा पूर्वी, दोनों पद्धतियों पर आधारित बवेरिया में एक उपचार विद्यालय की स्थापना के लिए प्रसिद्ध हैं। इस वार्तालाप में श्रील प्रभुपाद पुनर्जन्म के प्रथम और आधारभूत मौलिक सिद्धान्त का विवेचन करते हैं—आध्यात्मिक जीव भौतिक शरीर से भिन्न है। चेतन आत्मा और शरीर दोनों अलग-अलग हैं—इस अनुस्थापन के पश्चात् श्रील प्रभुपाद बताते हैं कि चेतन पुरुष अथवा आत्मा मृत्यु के समय किस प्रकार दूसरे शरीर में निरन्तर देहान्तरण करता रहता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : अपने काम में मैंने पाया है कि स्वाभाविक अहं मरना नहीं चाहता। परन्तु यदि आप यह अनुभव करें

[आसन्न-मृत्यु का अनुभव] तो ऐसा लगता है कि आप मृत्यु की दहलीज को पार करके एक बिल्कुल भिन्न वास्तविकता में चले जाते हैं।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यह भिन्न होती है। यह अनुभव एक रोगग्रस्त मनुष्य के पुन: स्वास्थ्य लाभ करने जैसा होता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : तो, इस तरह जो व्यक्ति मर जाता है, वह वास्तविकता के किसी उच्चतर स्तर का अनुभव करता है?

श्रील प्रभुपाद : जो मरा है, वह व्यक्ति नहीं है, लेकिन शरीर है। वैदिक ज्ञान के अनुसार शरीर तो सदा मृत है। उदाहरण के लिए, माइक्रोफोन धातु से बना होता है। जब माइक्रोफोन में से विद्युत-ऊर्जा गुजरती है, तो वह ध्वनि को विद्युत तरंगों में परिवर्तित कर देता है, जिनकी शक्ति को बढ़ा कर लाउडस्पीकरों से प्रसारित की जाती है। परन्तु जब उस यंत्र-व्यवस्था में विद्युत नहीं होती, तो कुछ भी नहीं होता। चाहे माइक्रोफोन काम कर रहा हो, या बिगड़ा हुआ हो, वह एक धातु, प्लास्टिक इत्यादि से बने एक संघटन से ज्यादा कुछ नहीं रह जाता है। इसी तरह मानव-शरीर भीतरी जीवन्त शक्ति के कारण काम करता रहता है। जब यह जीवन्त शक्ति शरीर छोड़ देती है, तब कहा जाता है कि शरीर मर गया। परन्तु वस्तुत: वह तो सदैव मृत है। जीवन्त शक्ति ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है; इसकी उपस्थिति ही उसे जीवन्त होने का आभास देती है। परन्तु "जीवित" हो या "मृत," भौतिक शरीर जड़ पदार्थों के एक ढेर से अधिक कुछ नहीं है।

गीता का पहला उपदेश (२.११) स्पष्ट करता है कि भौतिक शरीर की स्थिति अन्तत: बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं होती।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता:॥

"श्रीभगवान् ने कहा—पंडित की तरह बोलते हुए तुम उस वस्तु के लिए शोक कर रहे हो, जो शोक करने योग्य नहीं है। जो पंडित

हैं, वे न तो जीवितों के लिए और न मृतकों के लिए विलाप करते हैं। मृत शरीर दार्शनिक जिज्ञासा का वास्तविक विषय नहीं होता। बल्कि, हमारा चिन्तन सक्रिय सिद्धान्त के विषय में होना चाहिए—वह सिद्धान्त जो इस मृत शरीर को चलाता है—अर्थात् आत्मा।

प्रो. ड्युर्कहाईम : आप अपने शिष्यों को किस प्रकार उस शक्ति को जानने के बारे में शिक्षा देते हैं, जो पदार्थ नहीं है, परन्तु जो पदार्थ को जीवित जैसा प्रतिभासित करती है? बौद्धिक रूप से मैं स्वीकार करता हूँ कि आप एक ऐसे दर्शन की बात कर रहे हैं, जिसमें सत्य है। मुझे इसमें सन्देह नहीं। परन्तु आप किसी को इसकी अनुभूति कैसे कराते हैं?

आत्मा की प्रतीति कैसे हो?

श्रील प्रभुपाद : यह तो बहुत सरल बात है। एक सक्रिय तत्त्व है जो शरीर को चलाता है; जब वह नहीं होता, तब शरीर गतिमान नहीं रहता। इस प्रकार वास्तविक प्रश्न है : "वह सक्रिय तत्त्व क्या है?" यह शोध वेदान्त-दर्शन का केन्द्रबिन्दु है। वास्तव में, वेदान्त-सूत्र *अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा* सूत्र से प्रारम्भ होता है : "शरीरस्थ आत्मा का स्वरूप क्या है?" अत: वैदिक दर्शन के विद्यार्थी को पहले जीवित शरीर और मृत शरीर में भेद करना सिखाया जाता है। यदि वह इस तत्त्व को ग्रहण करने में असमर्थ रहता है, तो उसे तर्क के दृष्टिकोण से समस्या पर विचार करने के लिए कहा जाता है। कोई भी यह देख सकता है कि आत्मा, जो सक्रिय तत्त्व है, उसकी उपस्थिति के कारण शरीर में परिवर्तन होते हैं और वह गतिशील रहता है। सक्रिय तत्त्व की अनुपस्थिति में शरीर में न तो परिवर्तन होते हैं और न ही वह गतिशील रहता है। अतएव शरीर के अन्दर कुछ ऐसा होना चाहिए, जो इसे गति प्रदान करता है। यह अवधारणा बहुत कठिन नहीं है।

शरीर सदैव मृत है। यह एक बड़े यंत्र जैसा है। टेप-रेकॉर्डर, मृत पदार्थ से बनाया जाता है, परन्तु ज्योंही आप, जो एक जीवन्त व्यक्ति हैं, बटन को दबाते हैं, वह काम करने लगता है। इसी प्रकार शरीर भी निर्जीव पदार्थ है, परन्तु शरीर में जीवन-शक्ति होती है। जब तक वह सक्रिय तत्त्व शरीर में रहता है, तब तक शरीर प्रतिक्रिया करता है और जीवित लगता है। उदाहरणार्थ, हम सब में बोलने की शक्ति है। यदि मैं अपने एक शिष्य से यहाँ आने को कहूँ, तो वह आयेगा। यदि सक्रिय तत्त्व शरीर को त्याग देता है, तब मैं उसे सहस्रों वर्षों तक बुलाता रहूँ फिर भी वह नहीं आयेगा। यह समझना बहुत आसान है।

परन्तु वह सक्रिय तत्त्व वास्तव में है क्या? यह एक अलग विषय है और आध्यात्मिक ज्ञान का वास्तविक प्रारम्भ इस प्रश्न के उत्तर के साथ होता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : आपने जो मृत शरीर के बारे में बात कही, उसे मैं समझ सकता हूँ कि कोई तत्त्व इसके अन्दर अवश्य होगा, जो इसे जीवित रखता है। इससे केवल एक ही निश्चित निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हम दो वस्तुओं की बात कर रहे हैं—शरीर और सक्रिय तत्त्व। परन्तु मेरा वास्तविक प्रश्न यह है कि हम अपने अन्तस्थ सक्रिय तत्त्व की अनुभूति प्रत्यक्ष अनुभव के रूप में कैसे प्राप्त कर सकते हैं, न कि मात्र एक बौद्धिक निष्कर्ष के रूप में। क्या हमारे आभ्यन्तरिक [आध्यात्मिक] मार्ग में यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि हम इस गम्भीर वास्तविकता का सचमुच अनुभव करें?

"मैं ब्रह्म अर्थात् आत्मा हूँ"

श्रील प्रभुपाद : आप स्वयं ही *वह* सक्रिय तत्त्व हो। जीवित शरीर और मृत शरीर अलग हैं; सक्रिय तत्त्व की उपस्थिति अथवा

अनुपस्थिति ही भेद है। जब वह वहाँ नहीं रहता, शरीर को मृत कहा जाता है। अतएव वास्तविक आत्मा ही सक्रिय तत्त्व है। वेदों में हमें यह सूत्र मिलता है : *सोऽहम्*—"मैं सक्रिय तत्त्व हूँ।" यह भी कहा गया है : *अहं ब्रह्मास्मि*—"मैं यह भौतिक शरीर नहीं हूँ। मैं ब्रह्म अर्थात् आत्मा हूँ।" यही आत्म-साक्षात्कार है। आत्म-साक्षात्कार कर चुके व्यक्ति का वर्णन भगवद्गीता में किया गया है। *ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति*—जब मनुष्य आत्म-साक्षात्कार कर लेता है, तब वह न तो शोक करता है, न आकांक्षा करता है। *सम: सर्वेषु भूतेषु*—वह सभी प्राणियों के प्रति—मानव, पशु और सभी जीवधारियों के प्रति समभाव रखता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : इस बात पर विचार करें। आपका कोई शिष्य कह सकता है—"मैं आत्मा हूँ।" परन्तु हो सकता है कि वह ऐसा अनुभव न कर सके।

श्रील प्रभुपाद : वह अनुभव कैसे *नहीं* कर सकता? वह जानता है कि वह सक्रिय तत्त्व है। अन्तत: प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वह शरीर नहीं है। एक बच्चा तक यह जानता है। हम जिस तरह बात करते हैं, उसके परीक्षण से हम यह देख सकते हैं। हम कहते हैं, "यह *मेरी* अंगुली है।" हम कभी नहीं कहते, "मैं अंगुली।" तो वह 'मैं' क्या है? यही तो आत्म-साक्षात्कार है—"मैं यह शरीर नहीं हूँ।"

यह अनुभूति दूसरे जीवधारियों पर भी लागू की जा सकती है। आदमी पशुओं को क्यों मारता है? दूसरों को क्यों कष्ट देता है? जो आत्म-साक्षात्कार कर चुका है, वह देख सकता है : यह एक और आत्मा है। उसका शरीर मात्र भिन्न है, परन्तु जो सक्रिय तत्त्व मेरे शरीर में है, वही इसके शरीर में भी कार्य कर रहा है।" आत्म-साक्षात्कार कर चुका व्यक्ति सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है, यह जानते हुए कि सक्रिय तत्त्व, आत्मा, न केवल मानव शरीरों में है,

अपितु पशुओं, पक्षियों, मछलियों, कृमियों, वृक्षों और पौधों के शरीरों में भी है।

इसी जीवन में पुनर्जन्म

सक्रिय तत्त्व आत्मा है और मृत्यु के समय आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण करता है। शरीर भिन्न हो सकता है, परन्तु आत्मा वही रहता है। हम अपने जीवन-काल में भी इस शारीरिक परिवर्तन का अनुभव कर सकते हैं। हमने शैशव से कुमारावस्था में देहान्तरण किया है, कुमारावस्था से यौवन में, और यौवन से प्रौढ़ावस्था में। फिर भी इस समूचे काल में चेतन 'स्व' अथवा आत्मा वही रहा है। शरीर भौतिक है, और वास्तविक 'स्व' आध्यात्मिक है। जब कोई यह समझने लगता है, तब वह स्वरूप-सिद्ध कहलाता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : मैं समझता हूँ कि पश्चिमी देशों में अब हम एक अत्यन्त निर्णायक क्षण की ओर अग्रसर हैं, क्योंकि हमारे इतिहास में पहली बार, यूरोप और अमरीका के लोग उन आंतरिक अनुभूतियों पर गम्भीरता से विचार करने लगे हैं जिनसे सत्य प्रकट होता है। निस्सन्देह, पूर्वी देशों में सदैव ऐसे दार्शनिक हुए हैं, जो उन अनुभूतियों को जान चुके हैं जिनसे मृत्यु का भयावह स्वरूप समाप्त हो जाता है और वह एक अधिक पूर्ण जीवन के लिए द्वार जैसी हो जाती है।

अपनी सामान्य शारीरिक आदतों को वश में लाने के इस अनुभव की लोगों को आवश्यकता है। यदि वे उस शारीरिक अनुभव के पार जा सकें, तो उन्हें अकस्मात् अनुभूति हो जाती है कि एक बिल्कुल अलग ही तत्त्व उनके भीतर काम कर रहा है। उन्हें अपने "आन्तरिक जीवन" का बोध हो जाता है।

श्रील प्रभुपाद : भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त स्वत: ही उस भिन्न तत्त्व का अनुभव करता है, क्योंकि वह कभी नहीं सोचता कि "मैं यह शरीर

हूँ।" वह सोचता है, *अहं ब्रह्मास्मि*—"मैं आत्मा हूँ।" भगवद्गीता में पहला उपदेश जो भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया, वह यह है : "मेरे प्रिय अर्जुन, तुम शरीर की स्थिति को बहुत गम्भीरता से ले रहे हो, परन्तु एक विद्वान् पुरुष इस भौतिक शरीर, मृत अथवा जीवित, को इतनी गम्भीरता से नहीं लेता।" आध्यात्मिक प्रगति के पथ पर पहला अनुभव यही है। इस संसार में हर व्यक्ति शरीर की बहुत अधिक चिन्ता करता है, और जब तक वह जीवित है, वह अनेक प्रकारों से इसकी देखभाल करता है। जब वह मर जाता है, तो लोग इसके ऊपर भव्य स्मारकों और मूर्तियों का निर्माण करते हैं। यह देहात्मबुद्धि है, परन्तु कोई मनुष्य उस सक्रिय तत्त्व को नहीं समझता, जो शरीर को जीवन तथा सौंदर्य प्रदान करता है। कोई नहीं जानता कि मृत्यु के समय वास्तविक आत्मा, सक्रिय तत्त्व, कहाँ चला गया है। यह अज्ञान ही है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : प्रथम विश्वयुद्ध में जब मैं नवयुवक था, तब मैंने मोर्चे पर चार वर्ष बिताये थे। अपनी टुकड़ी में मैं उन दो अफसरों में से एक था, जो घायल नहीं हुए थे। युद्ध-भूमि में मैंने बार-बार मृत्यु को देखा। अपने समीप खड़े हुए आदमियों को मैंने गोली लगते देखा और उनका जीवन-तत्त्व क्षणभर में ही चला गया। जो कुछ शेष रहा, जैसा कि आप कहते हैं, एक आत्मा-रहित शरीर था। परन्तु जब मृत्यु समीप थी और मैंने मान लिया था कि मैं भी मर सकता हूँ, मुझे अनुभव हुआ कि मेरे भीतर ऐसा कुछ है, जिसका मृत्यु से कोई सरोकार नहीं है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यही आत्मानुभूति है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : युद्ध के इस अनुभव ने मेरे ऊपर गहरा प्रभाव छोड़ा। यही मेरे आन्तरिक पथ का प्रारम्भ था।

श्रील प्रभुपाद : वेदों में कहा गया है, *नारायण-परा: सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।* यदि कोई ईशानुभूत आत्मा है, तो वह किसी से भी नहीं डरता।

प्रो. ड्युर्कहाईम : क्या ऐसा कहना सही है कि आत्मानुभूति की

प्रक्रिया आभ्यन्तरिक अनुभवों का एक क्रम है? यहाँ यूरोप में लोगों को ऐसे अनुभव हुए हैं। वास्तव में, मैं विश्वास करता हूँ कि यूरोप का सच्चा खजाना यही है कि बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्हें युद्ध-क्षेत्रों, बन्दी-शिविरों और बम-आक्रमणों का अनुभव हुआ है। वे अपने मन में उन क्षणों की स्मृतियाँ संजोये हुए हैं, जब मौत इतनी निकट आ गई थी, जब वे घायल हुए थे और लगभग उनकी धज्जियाँ उड़ गईं थीं, तब उन्हें अपने शाश्वत स्वरूप की झलक दिखाई दी। परन्तु अब लोगों को यह समझाने की आवश्यकता है कि युद्ध-भूमियों, बन्दी-शिविरों और बम-आक्रमणों की आवश्यकता नहीं है, जिससे वे उन आभ्यन्तरिक अनुभूतियों को गम्भीरता से समझ सकें। मानव जब दिव्य सत्ता के बोध से अकस्मात् संपर्क में आता है, तब वह समझने लगता है कि शरीर का अस्तित्व ही सब कुछ नहीं है।

शरीर स्वप्नवत् है

श्रील प्रभुपाद : हम प्रत्येक रात को इसका अनुभव कर सकते हैं। जब हम स्वप्न देखते हैं, तब हमारा शरीर तो शय्या पर पड़ा होता है, पर हम कहीं अन्यत्र चले जाते हैं। इस तरह हम सबको अनुभव होता है कि हमारी वास्तविक पहचान इस शरीर से पृथक् है। जब हम स्वप्न देखते हैं, तो शय्या पर पड़े हुए अपने शरीर को भूल जाते हैं। हम विभिन्न शरीरों और विभिन्न स्थानों में काम करते हैं। इसी प्रकार, दिन के समय हम अपने स्वप्न के उन शरीरों को भूल जाते हैं, जिनके द्वारा हमने अनेक स्थानों की यात्रा की। सम्भवत: अपने स्वप्न-शरीरों में हम आकाश में उड़े थे। रात में हम अपने जाग्रत शरीर को भूल जाते हैं, और दिन में हम अपने स्वप्न-शरीर को भूल जाते हैं। परन्तु हमारा चेतन आत्मा फिर भी जीवन्त रहता है, और हम दोनों शरीरों में अपने अस्तित्व का अनुभव किए रहते हैं। इसलिए हमें यह निष्कर्ष

निकालना होगा कि हम इन दोनों शरीरों में से एक भी नहीं हैं। कुछ समय के लिए हम एक प्रकार के शरीर में रहते हैं और मृत्यु के समय हम इसे भूल जाते हैं। अत: स्वप्न की भाँति शरीर वास्तव में मात्र एक मानसिक रचना है, किन्तु आत्मा इन सभी मनोरचनाओं से भिन्न है। यही है आत्मानुभूति। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं :

इन्द्रियाणि पराण्याहुर् इन्द्रियेभ्य: परं मन: ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे: परतस्तु स: ॥

"कर्मेन्द्रियाँ जड़ पदार्थ से श्रेष्ठ हैं, मन इन्द्रियों से श्रेष्ठतर है, बुद्धि मन से भी श्रेष्ठतर है और वह (आत्मा) बुद्धि से भी बढ़कर है।" (भगवद्गीता ३.४२)

प्रो. ड्युर्कहाईम : आज पहले आपने मिथ्या अहंकार की चर्चा की थी। क्या आपका मतलब यह था कि विशुद्ध अहंकार आत्मा है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, वही विशुद्ध अहंकार है। उदाहरण के लिए, इस समय मेरा यह ७८ वर्ष पुराना शरीर भारतीय है, और यह मेरा मिथ्या अहंकार है जो सोचता है, "मैं भारतीय हूँ।" "मैं यह शरीर हूँ।" यह एक भ्रान्त अवधारणा है। किसी दिन यह नाशवान् शरीर विलुप्त हो जायेगा, और तब मुझे दूसरा अस्थायी शरीर मिल जायेगा। यह मात्र क्षणिक भ्रमजाल है। सच्चाई यह है कि आत्मा अपनी वासनाओं और कर्मों के आधार पर एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण करता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : क्या चेतना भौतिक शरीर से अलग होकर स्वतंत्र रूप से रह सकती है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, विशुद्ध चेतना अर्थात् आत्मा को भौतिक शरीर की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के लिए, जब आप स्वप्न देखते हैं, आप अपने वर्तमान शरीर को भूल जाते हैं, फिर भी आप चेतन रहते हैं। आत्मा अर्थात् चेतना, जल की भाँति है। जल शुद्ध होता है,

परन्तु जैसे ही वह आकाश से गिरता है और पृथ्वी को छूता है, वह मटमैला हो जाता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : हाँ।

श्रील प्रभुपाद : इसी प्रकार हम आत्माएँ हैं, हम शुद्ध हैं, परन्तु जैसे ही हम आध्यात्मिक लोक को छोड़ते हैं और इन भौतिक देहों के संपर्क में आते हैं, हमारी चेतना आच्छादित हो जाती है। चेतना शुद्ध रहती है, परन्तु अब वह कीचड़ (इस शरीर) से ढक गयी है। इसी कारण लोग लड़ते हैं। वे भ्रमवश अपने आपको शरीर मान बैठते हैं, यह सोचते हुए, "मैं जर्मन हूँ," "मैं अंग्रेज हूँ," "मैं काला हूँ," "मैं गोरा हूँ," "मैं यह हूँ," "मैं वह हूँ,"—इतनी सारी शारीरिक उपाधियाँ। शरीरों की ये उपाधियाँ अशुद्धियाँ हैं। इसी कारण कलाकार नंगे चित्र अथवा नंगी मूर्तियाँ बनाते हैं। उदाहरण के लिए फ्रांस में वे नग्नता को 'विशुद्ध कला' समझते हैं। उसी प्रकार, जब आप आत्मा की नग्नता को अथवा सच्ची अवस्था को—इन शारीरिक उपाधियों से रहित—समझने लगते हैं, वही विशुद्धता होती है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : आत्मा शरीर से भिन्न है, इस तथ्य को समझना इतना कठिन क्यों प्रतीत होता है?

प्रत्येक व्यक्ति जानता है, "मैं यह शरीर नहीं हूँ"

श्रील प्रभुपाद : यह कठिन *नहीं* है। आप इसका अनुभव कर सकते हैं। केवल मूर्खता के कारण लोग कुछ और सोचते हैं; परन्तु प्रत्येक व्यक्ति वस्तुत: जानता है, "मैं यह शरीर नहीं हूँ।" इसका अनुभव करना बहुत आसान है। मेरा आस्तित्व है! मैं समझता हूँ कि मैं अपने शिशु-शरीर में रह चुका हूँ, मैं बालक-शरीर में भी था और एक लड़के के शरीर में भी था। मैं इतने सारे शरीरों में रह चुका हूँ, और इस समय

मैं एक बूढ़े शरीर में हूँ। अथवा उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि आपने इस समय एक काला कोट पहन रखा है। अगले ही क्षण आप सफेद कोट पहन सकते हैं। परन्तु आप न तो काला कोट हैं, न ही सफेद कोट; आपने मात्र कोटों को बदल लिया है। यदि मैं आपको, "श्रीमान् काला कोट," पुकारूँ तो यह मेरी मूर्खता होगी। इसी प्रकार अपने जीवन-काल में मैंने शरीरों को कई बार बदला है, परन्तु मैं इनमें से कोई भी शरीर नहीं हूँ। यही है सच्चा ज्ञान।

प्रो. ड्युर्कहाईम : इतना सब होने पर भी क्या आप इसमें कठिनाई नहीं देखते हैं? उदाहरणार्थ, भले ही बौद्धिक रूप से आप अच्छी तरह समझ गये हों कि आप शरीर नहीं हैं, तथापि मृत्यु का भय आपको सता सकता है। क्या इसका मतलब यह नहीं है कि आपने इसे अनुभव से नहीं समझा? ज्योंही आपने इसे अनुभव से समझ लिया, आपको मृत्यु का भय नहीं होना चाहिए, क्योंकि आप जानते हैं कि वास्तव में आप मर नहीं सकते।

श्रील प्रभुपाद : अनुभव एक उच्च अधिकारी से प्राप्त होता है—ऐसा कोई, जिसका ज्ञान उच्चतर है। वर्षों तक मैं शरीर नहीं हूँ, यह अनुभव करने का प्रयास करने की अपेक्षा मैं भगवान् से, श्रीकृष्ण से, जो अक्षत स्रोत हैं, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ। तब समझो कि मैंने एक प्रामाणिक अधिकारी से सुनकर अपने अमर्त्य स्वरूप का अनुभव प्राप्त कर लिया। यही पूर्ण विधि है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : हाँ, मैं समझता हूँ।

श्रील प्रभुपाद : इसलिए वेदों का उपदेश है—*तद् विज्ञानार्थं स गुरुम् एवाभिगच्छेत्।* "जीवन की पूर्णता का श्रेष्ठतम अनुभव प्राप्त करने के लिए आपको गुरु के पास जाना होगा।" और गुरु कौन है? किसके पास मुझे जाना चाहिए? मुझे उसके पास जाना चाहिए, जिसने अपने गुरु से समुचित रूप से श्रवण किया हो। इसी को गुरु-शिष्य परम्परा

कहते हैं। मैं एक पूर्ण पुरुष से सुनता हूँ और ज्ञान को उसी प्रकार बिना किसी परिवर्तन के बाँटता हूँ। भगवान् कृष्ण गीता में हमें ज्ञान देते हैं और हम बिना किसी परिवर्तन के उसका वितरण करते हैं।

प्रो. ड्युर्कहाईम : गत बीस या तीस वर्षों में विश्व के पश्चिमी भाग में आध्यात्मिक विषयों के प्रति बड़ी रुचि जाग्रत हुई है। परन्तु दूसरी ओर, यदि विज्ञानी मनुष्य की आत्मा को विलुप्त कर देना चाहें, तो वे अपने परमाणु बमों से और दूसरे तकनीकी आविष्कारों से ऐसा करने में समर्थ होने की राह पर हैं। यदि वे मानवता को किसी उच्चतर लक्ष्य की ओर ले जाना चाहें, तो उन्हें वैज्ञानिक दृष्टि के माध्यम से मानव को भौतिक रूप में देखना बंद करना होगा। उन्हें हमको वैसे ही देखना चाहिए, जैसे हम हैं—चेतन आत्माएँ।

मानव-जीवन का ध्येय

श्रील प्रभुपाद : आत्मानुभूति अथवा ईश्वरानुभूति मानव-जीवन का उद्देश्य है, परन्तु वैज्ञानिक यह नहीं जानते हैं। आज के समय में आधुनिक समाज का नेतृत्व अंधे और मूर्ख कर रहे हैं। तथाकथित तकनीकी वेत्ता, वैज्ञानिक और दार्शनिक जीवन के सच्चे लक्ष्य को नहीं जानते। और लोग स्वयं भी अंधे हैं; तो इस समय स्थिति ऐसी है कि अंधे लोग ही अंधों को रास्ता दिखा रहे हैं। यदि एक अंधा आदमी दूसरे अंधे को राह दिखाने का प्रयास करे, तो हम किस प्रकार के परिणामों की आशा कर सकते हैं? नहीं, विधि यह नहीं है। यदि कोई सत्य को समझना चाहता है, तो उसे किसी आत्मानुभूति प्राप्त पुरुष के पास जाना ही होगा।

[कुछ और अतिथि कमरे में प्रवेश करते हैं]

शिष्य—श्रील प्रभुपाद, ये सज्जन धर्म-विज्ञान और दर्शनशास्त्र के

आचार्य हैं। और ये हैं डॉ. दारा। ये जर्मनी में योग-अध्ययन और पूर्ण सांख्यिक दर्शन (Integral Philosophy) संस्था के प्रधान हैं।

[श्रील प्रभुपाद उनका अभिवादन करते हैं, और वार्तालाप पुनः प्रारम्भ हो जाता है।]

प्रो. ड्युर्कहाईम : क्या मैं एक अन्य प्रश्न पूछ सकता हूँ? क्या अनुभूति का कोई दूसरा स्तर नहीं है, जो सामान्य मानव के लिए चेतना का गहनतर मार्ग खोल सके?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, इस अनुभूति का वर्णन भगवद्गीता (२.१३) में श्रीकृष्ण ने किया है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस प्रकार देहधारी आत्मा इस देह में बचपन से जवानी तथा जवानी से बुढ़ापे की ओर लगातार अग्रसर होता रहता है, उसी प्रकार आत्मा मृत्यु के समय दूसरे शरीर में चला जाता है। आत्मानुभूति प्राप्त कर चुका व्यक्ति इस प्रकार के परिवर्तन से घबराता नहीं है।"

परन्तु सबसे पहले मनुष्य को ज्ञान के इस आधारभूत सिद्धान्त को समझना चाहिए कि मैं यह शरीर नहीं हूँ। जब वह इस आधारभूत सिद्धान्त को समझ लेता है, तब वह गहनतर ज्ञान की ओर बढ़ सकता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : मुझे ऐसा लगता है कि शरीर और आत्मा की इस समस्या पर पूर्वी और पश्चिमी दृष्टिकोण में बड़ा भेद है। पूर्व की शिक्षाओं में आपको शरीर से मुक्त होना पड़ता है, जब कि पश्चिमी धर्मों में मनुष्य अपने शरीर में ही आत्मा को अनुभव करने का प्रयास करता है।

श्रील प्रभुपाद : इसे समझना बहुत आसान है। हमने भगवद्गीता से सुना है कि हम आत्मा हैं और यह कि हम इस शरीर के भीतर हैं। हमारे दुःखों का मूल है शरीर के साथ हमारी पहचान। मैंने इस शरीर में प्रवेश किया है इसलिए मैं दुःख भोग रहा हूँ। तो, चाहे पूर्वी हो या

पश्चिमी, मेरा असली काम यह होना चाहिए कि मैं किस प्रकार इस शरीर से बाहर आऊँ। क्या यह बात स्पष्ट है?

प्रो. ड्युर्कहाईम : हाँ।

श्रील प्रभुपाद : *पुनर्जन्म* शब्द का अर्थ यह है कि मैं आत्मा हूँ जिसने एक शरीर में प्रवेश किया है; परन्तु अगले जीवन में मैं किसी दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकता हूँ। वह कुत्ते का शरीर हो सकता है, बिल्ली का शरीर हो सकता है अथवा वह राजा का शरीर हो सकता है। किन्तु कष्ट तो होगा ही, चाहे राजा का शरीर हो या कुत्ते का शरीर हो। इन कष्टों में जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि सम्मिलित होंगे। इसलिए इन चार प्रकार के कष्टों के निवारण के लिए हमें इस शरीर से बाहर निकलना होगा। यही मनुष्य की असली समस्या है—कि वह अपने भौतिक शरीर से कैसे बाहर निकले।

प्रो. ड्युर्कहाईम : इसमें बहुत से जीवन लगते हैं?

श्रील प्रभुपाद : इसमें बहुत से जीवन लग सकते हैं अथवा आप इसे एक ही जीवन-काल में कर सकते हैं। यदि आप अपने इसी जीवन-काल में समझ लें कि आपके कष्टों का कारण आपका यह शरीर है, तब आपको पता लगाना चाहिए कि आप शरीर से कैसे बाहर निकलें? और जब आपको वह ज्ञान प्राप्त हो जाये, तो आप उस युक्ति को जान लेंगे जिससे तुरन्त इस शरीर से मुक्त हुआ जा सकता है।

प्रो. ड्युर्कहाईम : परन्तु इसका मतलब यह तो नहीं है कि मैं अपने शरीर को मार डालूँ; क्या ऐसा है? क्या इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं यह अनुभव करूँ कि मेरा आत्मा मेरे शरीर से स्वतंत्र है?

श्रील प्रभुपाद : नहीं, यह आवश्यक नहीं कि शरीर को मार डाला जाये। आपका शरीर मारा जाये या नहीं, एक न एक दिन आपको अपना वर्तमान शरीर तो छोड़ना ही होगा और दूसरा शरीर स्वीकार करना होगा। यह तो प्रकृति का विधान है, और आप इससे बच नहीं सकते।

प्रो. ड्युर्कहाईम : ऐसा लगता है कि इसमें कुछ ऐसी बातें हैं, जो ईसाई धर्म के अनुरूप भी हैं।

श्रील प्रभुपाद : इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आप ईसाई हैं या मुस्लिम अथवा हिन्दू। ज्ञान तो ज्ञान है। जहाँ कहीं ज्ञान मिल सके, उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। और ज्ञान यह है कि प्रत्येक जीवात्मा भौतिक शरीर में कैद है। यह ज्ञान समान रूप से हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों—प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता है। आत्मा शरीर के अन्दर बन्दी है, इसलिए उसे जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि को भोगना ही होगा। परन्तु हम सब अनन्त काल तक जीना चाहते हैं; हम पूर्ण ज्ञान चाहते हैं; हम पूर्ण आनन्द चाहते हैं। इस गन्तव्य तक पहुँचने के लिए शरीर से मुक्त होना आवश्यक है। विधि तो यही है।

प्रो. दारा : आप इस बात पर बल देते हैं कि हमें शरीर से बाहर आना होगा। परन्तु क्या हमें मानव के रूप में अपना अस्तित्व स्वीकार नहीं करना चाहिए?

श्रील प्रभुपाद : आपका प्रस्ताव है कि हम अपने मानव-अस्तित्व को स्वीकार करें। क्या आप मानते हैं कि इस मानव-शरीर के भीतर होना परिपूर्ण है?

प्रो. दारा : नहीं, मैं नहीं कहता कि वह परिपूर्ण है। परन्तु हमें इसे स्वीकार करना चाहिए और किसी आदर्श स्थिति को उत्पन्न करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

पूर्णता कैसे प्राप्त करें?

श्रील प्रभुपाद : आप मानते हैं कि आपकी स्थिति पूर्ण नहीं है। इसलिए सही विचार यह होना चाहिए कि हम पता लगाएँ कि पूर्णता कैसे प्राप्त की जाए।

प्रो. दारा : परन्तु आत्मा के रूप में हमें पूर्ण क्यों होना चाहिए? हम मानव के रूप में पूर्ण क्यों नहीं हो सकते?

श्रील प्रभुपाद : आप पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि इस शरीर में आपकी स्थिति पूर्ण नहीं है। तो, आप इस अपूर्ण स्थिति के प्रति क्यों इतने आसक्त हैं?

प्रो. दारा : यह शरीर वह साधन है, जिसके द्वारा हम दूसरे लोगों के साथ विचारों का आदान-प्रदान (व्यवहार) कर सकते हैं।

श्रील प्रभुपाद : यह तो पशुओं और पक्षियों के लिए भी सम्भव है।

प्रो. दारा : परन्तु हमारे बातचीत करने और पशु-पक्षियों के बातचीत करने में बड़ा अन्तर है।

श्रील प्रभुपाद : क्या है वह अन्तर? वे अपने समुदाय में बातचीत करते हैं, और आप अपने समुदाय में बातचीत करते हैं।

प्रो. ड्युर्कहाईम : मेरा विश्वास है कि असल बात यह है कि पशुओं में आत्मचेतना नहीं होती। वह नहीं समझता कि वास्तव में वह क्या है?

पशुओं से ऊपर उठना

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यही असली बात है। मानव यह समझ सकता है कि वह क्या है। पशु-पक्षी यह नहीं समझ सकते। अत: मानव होने के नाते, हमें आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयास करना चाहिए, न कि मात्र पशु-पक्षियों के स्तर पर व्यवहार करना। अतएव वेदान्त-सूत्र इस सूत्र से प्रारम्भ होता है : *अथातो ब्रह्म जिज्ञासा*—परम सत्य के विषय में जिज्ञासा करना मानव-जीवन का उद्देश्य है। यही मानव-जीवन का लक्ष्य है, न कि पशुओं की भाँति केवल आहार और निद्रा का भोग। हमारे पास अतिरिक्त बुद्धि है, जिसके द्वारा हम परम सत्य को समझ सकते हैं। *श्रीमद्भागवतम्* (१.२.१०) में कहा गया है—

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभि: ॥

"जीवन की आकांक्षाओं का लक्ष्य कभी भी इन्द्रियतृप्ति नहीं होना चाहिए। मनुष्य को जीने की इच्छा केवल इसलिए करनी चाहिए, क्योंकि मानव-जीवन उसे परम सत्य की जिज्ञासा करने में समर्थ बनाता है। सभी कार्यों का यही लक्ष्य होना चाहिए।"

प्रो. दारा : क्या दूसरों के हित के लिए हमारे शरीरों का उपयोग करना समय की बर्बादी है?

श्रील प्रभुपाद : आप दूसरों का हित नहीं कर सकते, क्योंकि आप जानते ही नहीं कि हित क्या है। आप शरीर के सन्दर्भ में हित की बात सोच रहे हैं, किन्तु शरीर इस दृष्टिकोण से मिथ्या है कि आप शरीर नहीं हैं। उदाहरणार्थ, आप किसी कमरे में रहते हैं, परन्तु आप स्वयं तो वह कमरा नहीं हैं। यदि आप केवल कमरे को सजाते रहें और खाना भूल जायें, तो क्या इससे हित हो सकता है?

प्रो. दारा : मैं नहीं समझता कि शरीर से कमरे की इस प्रकार की तुलना बहुत अच्छी है...

श्रील प्रभुपाद : इसका कारण यह है कि आप नहीं जानते कि आप शरीर नहीं हैं।

प्रो. दारा : परन्तु यदि आप कमरे से बाहर चले जायें, तो कमरा तो रहता है। किन्तु जब हम शरीर से बाहर चले जाते हैं, तो शरीर नहीं रहता।

श्रील प्रभुपाद : अन्तत: कमरा भी तो नष्ट हो जायेगा।

प्रो. दारा : मेरे कहने का मतलब है कि शरीर और आत्मा में अत्यन्त घनिष्ठता का सम्बंध होना आवश्यक है, एक प्रकार का ऐक्य—कम से कम उस अवधि तक जब तक हम जीवित हैं।

श्रील प्रभुपाद : नहीं, यह सच्चा ऐक्य नहीं है। इसमें एक अन्तर है। उदाहरणार्थ, वह कमरा जिसमें हम इस समय हैं, मेरे लिए तभी तक

महत्त्वपूर्ण है, जब तक मैं जीवित हूँ। अन्यथा इसका कोई महत्त्व नहीं। जब आत्मा शरीर को छोड़ देता है, तो शरीर को फेंक दिया जाता है, यद्यपि इसके मालिक को वह बहुत प्यारा था।

प्रो. दारा : परन्तु यदि आप अपने शरीर से अलग होना न चाहें, तो क्या होगा?

श्रील प्रभुपाद : प्रश्न यह नहीं है कि आप क्या चाहते हैं। आपको अलग होना ही पड़ेगा। ज्योंही आपकी मृत्यु होगी, त्योंही आपके सम्बंधी आपके शरीर को फेंक देंगे।

प्रो. ड्युर्कहाईम : कदाचित्, इससे अन्तर पैदा हो सकता है यदि व्यक्ति यह सोचे कि, "मैं आत्मा हूँ, और यह मेरा शरीर है," बजाय इसके कि "मैं शरीर हूँ, और यह मेरा आत्मा है।"

अमरत्व का रहस्य

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यह सोचना गलत होगा कि आप शरीर हैं, और आत्मा आपका है। यह सही नहीं है। *आप* आत्मा हैं, और आप एक अस्थायी शरीर से ढके हुए हैं। आत्मा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, न कि शरीर। उदाहरण के लिए, जब तक आप कोट पहने हैं, वह आपके लिए महत्त्व रखता है। परन्तु यदि वह फट जाये, तो आप उसे फेंक देते हैं, और दूसरा कोट खरीद लेते हैं। जीव निरन्तर इसी बात का अनुभव करता है। आप इस वर्तमान शरीर से अलग हो जाते हैं, और दूसरा शरीर स्वीकार कर लेते हैं। यही मृत्यु कहलाती है। वह शरीर जिसमें आप पहले वास कर रहे थे, महत्त्वहीन हो जाता है, और वह शरीर जिसे आप अब धारण किये हैं, महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यही बड़ी समस्या है—लोग उस शरीर को इतना अधिक महत्त्व देते हैं, कुछ ही वर्षों में जिसकी अदला-बदली किसी दूसरे शरीर के साथ हो जायेगी।

३

आत्मानुसन्धान

यद्यपि भौतिक शरीर के यांत्रिक क्रिया-कलाप की जानकारी में आधुनिक विज्ञान आगे बढ़ गया है, तथापि उसका ध्यान उस चिन्मय स्फुलिंग के विश्लेषण की ओर तनिक भी नहीं गया, जो शरीर को अनुप्राणित करता है। मॉन्ट्रियल गजट के एक लेख में, जो नीचे उद्धृत है, हम पाते हैं कि विश्व-विख्यात हृदय-विशेषज्ञ विल्फ्रेड जी. बिगलो इस बात पर जोर देते हैं कि, "आत्मा क्या है और वह कहाँ से आता है?" इन प्रश्नों पर विधिवत् शोध की जाए। इसी उद्धरण के आगे डॉ. बिगलो के तर्क के प्रत्युत्तर में लिखा गया श्रील प्रभुपाद का पत्र उद्धृत किया गया है। श्रील प्रभुपाद आत्म-विज्ञान के सम्बंध में ठोस वैदिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उस चिन्मय स्फुलिंग को समझने हेतु एक व्यावहारिक विधि का संकेत देते हैं, जो शरीर को जीवन देता है और पुनर्जन्म के सत्य को सिद्ध करता है।

मॉन्ट्रियल गजट का शीर्षक—

हृदय-शल्यचिकित्सक जानना चाहते हैं कि आत्मा है क्या?

विन्डसर : कनाडा के एक विश्वविख्यात हृदय-शल्य चिकित्सक कहते हैं कि वे शरीर में आत्मा के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं, जो मृत्यु के समय प्रस्थान कर जाता है, और कहते हैं कि धर्मशास्त्रियों को इसके विषय में अधिक जानकारी के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

टोरान्टो जनरल अस्पताल में हृदय-शल्यचिकित्सा यूनिट के प्रमुख डॉ. विल्फ्रेड जी. बिगलो ने कहा कि, "एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से जो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करता है," उनका विचार है कि समय आ गया है कि "इसके रहस्य को अनावृत किया जाये और पता लगाया जाये कि वह है क्या।"

बिगलो उस पैनल के सदस्य थे, जो मृत्यु के सही-सही क्षण को परिभाषित करने के प्रयासों से सम्बन्धित एसेक्स काउण्टी मेडिको-लीगल सोसायटी के समक्ष विचार विमर्श के लिए उपस्थित हुआ था।

हृदय के एवं अन्य अंगों के प्रत्यारोपण के युग में यह प्रश्न उन मामलों में जीवन्त हो उठा है जब 'दाता' निश्चित रूप से मर रहे हों।

कनाडा की मेडिकल एसोसियेशन ने मृत्यु की व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा प्रस्तुत की है कि मृत्यु वह क्षण है, जब रोगी मूर्च्छा की स्थिति में होता है और वह किसी प्रकार की उत्तेजना पर प्रतिक्रिया नहीं करता और मशीन पर रिकार्ड की गई उसके मस्तिष्क की विद्युत-तरंगें समतल होती हैं।

पैनल के दूसरे सदस्य थे, ओन्टेरियो सर्वोच्च न्यायालय के

न्यायाधीश एडसन एल. हेनीज और विन्डसर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, जे. फ्रांसिस लेड्डी।

विचार-विमर्श में जिन प्रश्नों को बिगलो ने उठाया था, उनकी व्याख्या करते हुए उन्होंने बाद में एक साक्षात्कार में बताया कि बत्तीस वर्षों तक शल्य-चिकित्सक के रूप में उनके काम ने उनके मन में कोई सन्देह नहीं छोड़ा है कि आत्मा है।

"ऐसे कुछ उदाहरण मिलते हैं, जहाँ आप उस क्षण स्वयं उपस्थित हों जब लोग जीवित दशा से मृत्यु में प्रवेश करते हैं और उनमें कुछ रहस्यात्मक परिवर्तन होते हैं।

"उस समय सर्वाधिक ध्यानाकर्षक परिवर्तन होता है : आँखों में जीवन अथवा ज्योति का अभाव हो जाना। वे अपारदर्शी और पूर्णतः निर्जीव हो जाती हैं।

"हम जो देखते हैं, उसको शब्दों में लिखना कठिन है। वास्तव में मैं नहीं समझता कि इसको अच्छी तरह शब्दों में लिखना सम्भव भी है।"

"डीप फ्रीज" शल्य-तकनीक का क्षेत्र, जिसे *हाइपोथर्मिया* के नाम से जाना जाता है, उसमें अग्रणी कार्य करने के कारण और "हार्ट वाल्व सर्जरी" के कारण बिगलो विश्व-विख्यात हो गये। उन्होंने कहा कि "आत्मा का अनुसन्धान" धर्म-विज्ञान एवं अन्य सम्बन्धित प्रवर्गों द्वारा विश्वविद्यालय में किया जाना चाहिए।"

इस विचार-विमर्श में लेड्डी ने कहा कि "यदि आत्मा है, आप उसे देख तो नहीं सकते। आप उसे ढूँढ भी नहीं सकते।"

"यदि कोई जीवन-शक्ति अथवा जीवन-तत्त्व है, तो वह क्या है?" समस्या यह है कि "आत्मा, भौगोलिक दृष्टि से, कहीं एक विशिष्ट स्थान पर तो होता नहीं है। वह शरीर में हर जगह है, और फिर भी शरीर में कहीं नहीं।"

लेड्डी ने कहा, ''प्रयोग प्रारम्भ करना अच्छा होगा, लेकिन मैं नहीं जानता कि आपको इनमें से किसी पर भी आँकड़े कैसे मिलेंगे'' उन्होंने आगे बताया कि इस विचार-विमर्श ने उन्हें सोवियत अन्तरिक्ष-यात्री का स्मरण करा दिया जिसने अन्तरिक्ष से वापस आने पर बताया कि ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है, क्योंकि उसने उन्हें वहाँ ऊपर नहीं देखा।

बिगलो ने कहा कि कदाचित् ऐसा हो, किन्तु आधुनिक औषध-विज्ञान में जब हम ऐसा कुछ पाते हैं जिसकी हम व्याख्या नहीं कर सकते, तो ''संकेत-शब्द यह होता है कि जवाब ढूँढ़िये, प्रयोगशाला में ले जाइये, उसे कहीं ऐसी जगह ले जाइये जहाँ सत्य को ढूँढ़ा जा सके।''

बिगलो ने कहा कि मुख्य प्रश्न है, ''आत्मा कहाँ है और वह कहाँ से आता है?''

श्रील प्रभुपाद वैदिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं

मेरे प्रिय डॉ. बिगलो,

कृपया मेरा अभिवादन स्वीकार करें। मैंने हाल ही के गजट में रे कोरेली का एक लेख पढ़ा, जिसका शीर्षक था : एक हृदय-शल्यचिकित्सक जानना चाहते हैं कि आत्मा क्या है। मुझे यह लेख बहुत रोचक लगा। आपकी टिप्पणियों से आपकी गहन अन्तर्दृष्टि का पता लगता है, इसलिए मैंने आपको इस विषय पर लिखने की बात सोची। सम्भवत: आप जानते हों कि मैं अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का संस्थापक-आचार्य हूँ। कनाडा में—मॉन्ट्रियल, टोरंटो, वैंकूवर और हेमिल्टन में मेरे कई मन्दिर हैं। इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन

का उद्देश्य, प्रत्येक आत्मा को विशेष रूप से उसकी मूल आध्यात्मिक स्थिति की शिक्षा देना है।

इसमें सन्देह नहीं कि आत्मा मनुष्य के हृदय में विद्यमान रहता है, और वह उन सभी ऊर्जाओं का स्रोत है जो शरीर का पोषण करती हैं। आत्मा की शक्ति समूचे शरीर में व्याप्त रहती है और इसी का नाम चेतना है। चूँकि यह चेतना समूचे शरीर में आत्मा की शक्ति का विस्तार करती है, अत: हमें शरीर के प्रत्येक अंग में पीड़ा और आनन्द का अनुभव होता है। आत्मा व्यष्टि है और वह एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण करता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि कोई व्यक्ति बाल्यावस्था से युवावस्था और तब वृद्धावस्था की ओर देहान्तरण करता है। जब हम नये शरीर में देहान्तरण करते हैं तो मृत्यु होती है, ठीक वैसे ही जैसे हम पुराने कपड़ों को बदल कर नये कपड़े पहनते हैं। इसे आत्मा का देहान्तरण कहा जाता है।

जब कोई आत्मा आध्यात्मिक जगत् के अपने असली घर को भूल कर इस भौतिक जगत् का भोग करना चाहता है, तो वह अस्तित्व के लिए इस संघर्षपूर्ण, कठोर जीवन को ग्रहण करता है। बारम्बार जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का यह अस्वाभाविक जीवन उस समय रोका जा सकता है, जब उसकी चेतना भगवान् की परम चेतना से जुड़ जाये। यही कृष्णभावनामृत आन्दोलन का आधारभूत सिद्धान्त है।

जहाँ तक हृदय-प्रत्यारोपण का सम्बंध है, उस समय तक सफलता का प्रश्न नहीं उठता जब तक ग्रहण करने वाले व्यक्ति का आत्मा प्रत्यारोपित हृदय में प्रवेश नहीं कर जाता। अतएव आत्मा की सत्ता स्वीकार की जानी चाहिए। मैथुन में यदि आत्मा नहीं है, तो गर्भाधान नहीं हो सकता, और न ही गर्भ-धारण। गर्भ-निरोध गर्भाशय को बिगाड़ देता है, जिससे वह आत्मा के लिए अच्छा स्थान नहीं रह

जाता। यह ईश्वर के आदेश के विरुद्ध है। ईश्वर के आदेश से एक आत्मा को किसी विशिष्ट गर्भाशय के लिए भेजा जाता है, किन्तु गर्भ-निरोध-विधियों से उसे उक्त गर्भाशय से वंचित कर दिया जाता है, और उसे किसी दूसरे गर्भ में रखना पड़ता है। यह परम प्रभु के आदेश का उल्लंघन है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति को लीजिए, जिसे एक विशिष्ट घर में रहना है। यदि वहाँ स्थिति इतनी अशान्त है कि वह उस घर में प्रवेश नहीं कर सकता, तो उसे बहुत हानि उठानी पड़ती है। यह नियम-विरुद्ध हस्तक्षेप है और कानून द्वारा दण्डनीय है।

निश्चय ही, 'आत्मा की शोध' का कार्य विज्ञान की प्रगति का सूचक होगा। परन्तु विज्ञान चाहे जितनी प्रगति कर ले, वैज्ञानिकों को आत्मा का पता नहीं मिलेगा। आत्मा के अस्तित्व को हम परिस्थितिजन्य तथ्यों के आधार पर ही स्वीकार कर सकते हैं, क्योंकि वैदिक साहित्य में उल्लेख है कि आत्मा का माप एक बिन्दु का दस हजारवाँ अंश है। इसलिए भौतिक विज्ञानियों के लिए आत्मा को पकड़ पाना सम्भव नहीं है। आप केवल उच्च अधिकारियों द्वारा दिये गए ज्ञान के आधार पर ही आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार कर सकते हैं। जिन तथ्यों को बड़े से बड़े वैज्ञानिक आज सत्य स्वीकार कर रहे हैं, हम इनकी व्याख्या बहुत समय पहले ही कर चुके हैं।

ज्योंही कोई आत्मा के अस्तित्व को समझ लेता है, वह तत्काल परमेश्वर के अस्तित्व को भी समझ सकता है। आत्मा और परमेश्वर में अन्तर इतना ही है कि परमात्मा विभु आत्मा हैं और जीवात्मा एक अत्यन्त लघु आत्मा है; परन्तु गुणात्मक दृष्टि से दोनों समान हैं। परमेश्वर सर्वव्यापक हैं, और जीवात्मा स्थानीकृत है। परन्तु दोनों के स्वभाव और गुण समान हैं।

आपने कहा है कि मुख्य प्रश्न है, "आत्मा कहाँ है, और वह कहाँ से आता है?" इसे समझना कठिन नहीं है। हमने पहले ही

विवेचन कर लिया है कि आत्मा जीव के हृदय में कैसे वास करता है, और मृत्यु के पश्चात् किस प्रकार वह दूसरे शरीर में आश्रय लेता है। मूलतः आत्मा परमेश्वर से आता है। जैसे एक चिनगारी, जो आग से निकलती है, आग से दूर गिरने पर बुझती-सी मालूम होती है, वैसे ही आत्मा का स्फुलिंग प्रारम्भ में आध्यात्मिक जगत् से भौतिक जगत् में आता है। भौतिक जगत् में आत्मा तीन विभिन्न स्थितियों में गिर जाता है, जिन्हें प्रकृति के गुण कहा जाता है—सत्त्व, रजस् और तमस्। जब आग की चिनगारी सूखी घास पर पड़ती है, तो वह अपनी आग्नेय अभिव्यक्ति जारी रखती है। जब वह चिनगारी जमीन पर गिरती है, तो वह अपनी आग्नेय अभिव्यक्ति उस समय तक प्रकट नहीं करती, जब तक कि कुछ ज्वलनशील वस्तुएँ मौजूद न हों; और जब चिनगारी पानी पर गिरती है, तो वह बुझ जाती है। इस प्रकार, हम देखते हैं आत्मा तीन प्रकार की स्थितियों को प्राप्त करता है। इनमें से एक स्थिति के अन्तर्गत जीवात्मा अपने आध्यात्मिक स्वरूप को पूर्णतः भूला हुआ होता है; दूसरी में लगभग भूला हुआ होता है, किन्तु फिर भी इसमें अपने आध्यात्मिक स्वरूप का सहज भाव रहता है; और तीसरी में अपनी आध्यात्मिक पूर्णता की गहन खोज करता रहता है। आत्मा के चिन्मय स्फुलिंग द्वारा आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने के लिए एक प्रामाणिक विधि है, और यदि उसका ठीक तरह मार्गदर्शन किया जाये, तो वह अतिशीघ्र वापस घर भेज दिया जाता है, अर्थात् भगवान् के पास, जहाँ से वह मूलतः गिरा था।

यदि वैदिक साहित्य से अधिकृत इस ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक समझ के आधार पर प्रस्तुत किया जाये तो यह मानव-समाज के लिए बड़ी देन होगी। तथ्य तो सबके सामने हैं। केवल उन्हें आधुनिक समझ के लिए ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करना है। यदि संसार

के डाक्टर और वैज्ञानिक सामान्य जनता को आत्मा के विज्ञान को समझने में सहायता दे सकें, तो यह एक महान योगदान होगा।

भवदीय,

ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी

४

पुनर्जन्म के तीन इतिवृत्त

सहस्रों वर्षों से भारतवर्ष के महानतम आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने शिष्यों से व्याख्या करने के निमित्त श्रीमद्भागवतम् के ऐतिहासिक उपाख्यानों का उपयोग किया है। वैसे ही तीन इतिवृत्त यहाँ उद्धृत किये गए हैं।

श्रीमद्भागवतम् एक दार्शनिक एवं साहित्यिक महाकाव्य है, जिसका भारतवर्ष के लिखित विशाल बौद्धिक भण्डार में महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष का चिर-सनातन ज्ञान वेदों में प्रकट हुआ है, जो संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ हैं और जो मानव-बोध के प्रत्येक क्षेत्र को छूते हैं। "वेद-साहित्य रूपी वृक्ष का पका हुआ फल" माना जाने वाला श्रीमद्भागवतम् वैदिक ज्ञान का सर्वांग सम्पूर्ण और अधिकृत प्रतिपादन है।

पुनर्जन्म के वैज्ञानिक सिद्धान्त समय की गति के साथ नहीं बदलते, वे सदैव समान बने रहते हैं, और ये कालातीत आख्यान आज के आधुनिक जिज्ञासु के लिए उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने वे बीते हुए युगों में ज्ञानबोध के इच्छुक लोगों के लिए थे।

१

दस लाख माताओं वाला राजकुमार

कुछ लोग आत्मा को आश्चर्यवत् देखते हैं; कुछ इसका आश्चर्यवत् वर्णन करते हैं; कुछ इसे आश्चर्यवत् सुनते हैं, और अन्य उसके विषय में सुनने के बाद भी, उसे बिल्कुल नहीं समझ सकते।

—भगवद्गीता २.२९

अपनी प्रसिद्ध कविता "इन्टिमेशन्स ऑफ इम्मोर्टेलिटि" (Intimations of Immortality) में ब्रिटिश कवि विलियम वर्ड्स्वर्थ लिखता है, "हमारा जन्म मात्र एक निद्रा और एक विस्मृति है।" अन्य एक कविता में वह एक शिशु को निम्नलिखित पंक्तियों से सम्बोधित करता है—

इस परिवर्तनशील पृथ्वी पर आने वाले हे मधुर नवागन्तुक!
यदि, जैसा कि कुछ अत्यन्त प्राचीन ऋषियों ने
निर्भयतापूर्वक अनुमान लगाया है,
तुम्हारा अपना अस्तित्व था, और मानव-जन्म था,
और, इससे पूर्व मानव माता-पिता ने तुम्हें आशीर्वाद दिया था,
इससे बहुत, बहुत पहले तुम्हारी वर्तमान माता ने,
ऐ असहाय अजनबी! तुमको छाती से लगा कर दूध पिलाया था।

श्रीमद्भागवतम् के निम्नलिखित ऐतिहासिक उपाख्यान में राजा चित्रकेतु का पुत्र अपने पूर्व-जन्मों का वर्णन करता है, और अपने

माता-पिता को आत्मा की अविनाशी प्रकृति और पुनर्जन्म-विज्ञान का उपदेश देता है।

राजा चित्रकेतु की अनेक पत्नियाँ थीं, और यद्यपि वह सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ था, उसे उनमें से किसी से भी सन्तान प्राप्त नहीं हुई क्योंकि उसकी सुन्दर पत्नियाँ सब की सब बाँझ थीं।

एक दिन योगी-ऋषि अंगिरा राजा चित्रकेतु के महल में आये। राजा तत्काल अपने सिंहासन से उठकर खड़े हो गये और वैदिक परम्परा के अनुसार उनको प्रणाम किया।

ऋषि ने पूछा, "हे राजा चित्रकेतु, मैं देख सकता हूँ कि तुम्हारा मन उद्विग्न है। तुम्हारा पीला मुख तुम्हारी गम्भीर चिन्ता को व्यक्त करता है। क्या तुमने अपने अभीष्ट ध्येय पूरे नहीं किये हैं?"

चूँकि अंगिरा महान् योगी थे, अतः वे राजा की वेदना का कारण जानते थे, किन्तु अपने ही कारणों से उन्होंने चित्रकेतु से पूछा, मानो उन्हें जानने की आवश्यकता हो।

राजा चित्रकेतु ने उत्तर दिया, "हे अंगिरा! महान् तपस्या करने के कारण आपने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है। आप मुझ-जैसे बद्धात्माओं की प्रत्येक आन्तरिक और बाह्य बात जान सकते हैं। हे महात्मन्! आपको हर बात का ज्ञान है, फिर भी आप मेरी चिन्ता का कारण पूछते हैं। अतएव आपके आदेश के पालन हेतु मैं अपने कष्ट का कारण बताता हूँ। किसी भूखे आदमी को फूलों की माला से सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार, मेरा विशाल साम्राज्य और अतुल सम्पत्ति मेरे लिए निरर्थक हैं, क्योंकि मैं मनुष्य की सच्ची सम्पत्ति से वंचित हूँ। मुझे पुत्र नहीं है। क्या आप मुझे वास्तविक रूप में सुखी बनने और पुत्र-प्राप्ति में सहायता नहीं कर सकते?"

अंगिरा, जो बहुत दयालु थे, राजा की सहायता करने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने देवताओं के लिए एक विशिष्ट यज्ञ किया, और यज्ञ में

अर्पित अन्न को प्रसाद के रूप में चित्रकेतु की सर्वश्रेष्ठ रानी कृतद्युति को दिया। अंगिरा ने कहा, "हे राजन्! अब तुम्हें एक पुत्र प्राप्त होगा, जो तुम्हारे लिए हर्ष और शोक दोनों का कारण बनेगा।" इसके बाद, राजा के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना, ऋषि अन्तर्धान हो गये।

चित्रकेतु यह जान कर बहुत हर्षित हुए कि अन्ततः उन्हें एक पुत्र प्राप्त होगा, परन्तु वे ऋषि के अन्तिम वचनों से भ्रमित हो गए।

"अंगिरा कहना चाहते होंगे कि जब मुझे पुत्र उत्पन्न होगा, तो मैं बहुत प्रसन्न हूँगा। यह तो निश्चित रूप से सत्य है। परन्तु बालक शोक का कारण होगा, इससे उनका क्या मतलब हो सकता है? निस्सन्देह, वह मेरा इकलौता पुत्र होने के कारण अपने आप ही मेरे सिंहासन और राज्य का उत्तराधिकारी बन जायेगा। अतएव वह कदाचित् अभिमानी और अवज्ञाकारी हो सकता है। वही शोक का कारण हो सकता है। किन्तु कोई पुत्र न होने की अपेक्षा अवज्ञाकारी पुत्र का होना अच्छा है।"

कुछ समय पश्चात् कृतद्युति ने गर्भधारण किया और उसे एक पुत्र हुआ। इस समाचार को सुनकर राज्य के सभी लोगों ने हर्ष मनाया। राजा चित्रकेतु हर्ष से फूला न समाया।

ज्यों-ज्यों राजा ने सावधानी के साथ पुत्र का लालन-पालन किया, त्यों-त्यों रानी कृतद्युति के लिए उसका प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा, और अपनी बाँझ पत्नियों के लिए उसका प्रेम धीरे-धीरे समाप्त हो गया। दूसरी रानियाँ निरन्तर अपने भाग्य को कोसतीं, क्योंकि जो पत्नी पुत्रहीन होती है वह घर पर पति द्वारा उपेक्षित रहती है, और उसकी सपत्नियाँ उसके साथ दासी-जैसा बर्ताव करती हैं। बाँझ पत्नियाँ क्रोध और ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगीं। ज्यों-ज्यों उनकी ईर्ष्या बढ़ने लगी, उनकी बुद्धि क्षीण होती गई और उनके हृदय पत्थर-जैसे कठोर होते गये। उन्होंने एक गुप्त मंत्रणा में निश्चिय किया कि अपने पति का

प्रेम पुनः प्राप्त करने की उनकी दुविधा का मात्र एक समाधान है—बालक को विष दिया जाये।

एक दिन दोपहर के समय, जब रानी कृतद्युति अपने महल के आँगन में चहल कदमी कर रही थी, उसे अपने कमरे में शान्तिपूर्वक सोये पुत्र का विचार आया। चूँकि वह पुत्र को अत्यधिक स्नेह करती थी और क्षण भर के लिए भी वह उससे अलग होना सह नहीं सकती थी, अतः उसने धात्री को आदेश दिया कि वह जाये तथा राजकुमार को नींद से जगाकर बगीचे में ले आये।

परन्तु जब दासी बच्चे के समीप पहुँची, तो उसने देखा कि राजकुमार की आँखें ऊपर की ओर पलट गई हैं, और उसमें जीवन का कोई चिह्न नहीं है। भयभीत होकर उसने रुई का एक फाहा बालक के नथुनों के नीचे रखा, परन्तु रुई हिली नहीं। यह देख कर वह चीखने लगी : "हाय! अब मैं मर गई!" और वह जमीन पर गिर पड़ी। भारी उद्विग्नता में वह दोनों हाथों से छाती पीटने लगी और जोर-जोर से रोने लगी।

कुछ देर हो गई, और चिन्तातुर रानी बालक के शयन-कक्ष में गई। धात्री का क्रन्दन सुन कर उसने कमरे में प्रवेश किया और देखा कि उसका पुत्र इस दुनिया से चल बसा है। गहन शोक में रानी के केश और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये, तथा वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

जब राजा ने पुत्र की अचानक मृत्यु का समाचार सुना, तो वे शोक से लगभग अंधे हो गए। उनका शोक ज्वाला की तरह बढ़ने लगा, और जैसे ही वे मृत बालक को देखने के लिए दौड़े, वे बार-बार लड़खड़ाने लगे और गिरने लगे। अपने मंत्रियों और राज-दरबारियों से घिरे हुए राजा ने बालक के कक्ष में प्रवेश किया और वे बालक के पैरों के पास गिर पड़े। उनके केश और वस्त्र तितर-बितर हो गये। जब

उनकी चेतना लौटी, उनकी साँस भारी थी, उनकी आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं, और वे बोलने में असमर्थ थे।

जब रानी ने अपने पति को गहन शोक में डूबे हुए देखा और मृत पुत्र को पुनः देखा, तो वह भगवान् को कोसने लगी। इससे राजमहल के सभी निवासियों के हृदय में वेदना बढ़ने लगी। रानी की पुष्प-मालाएँ उसके शरीर से खिसकने लगीं; और उसके चिकने, घने, काले केश उलझ गये। उसकी आँखों के नीचे लगे अंगराग गिरते हुए आँसुओं से धुलने लगे।

"हे विधाता! तुमने पिता के जीवन-काल में ही उसके पुत्र को मृत्यु दी है। तुम निश्चित ही जीवों के शत्रु हो, और तुम बिल्कुल दयालु नहीं हो।" अपने प्यारे पुत्र की ओर मुड़ते हुए वह बोली : मेरे प्रिय पुत्र! मैं निस्सहाय और दुःखी हूँ। तुम्हें मेरा संग नहीं छोड़ना चाहिए। तुम मुझे छोड़ कर कैसे जा सकते हो? अपने शोकाकुल पिता की ओर देखो! तुम बहुत समय तक सो चुके हो। अब दया करके जाग जाओ। तुम्हारे साथी तुम्हें खेलने के लिए पुकार रहे हैं। तुम्हें बहुत भूख लगी होगी। इसलिए तुम तुरन्त खड़े हो जाओ और भोजन कर लो। मेरे प्रिय पुत्र! मैं अत्यन्त अभागी हूँ, क्योंकि अब मैं तुम्हारी मीठी मुस्कान नहीं देख सकती। तुमने सदा के लिए आँखे मूँद ली हैं। तुम इस लोक से दूसरे लोक को ले जाए गये हो, जहाँ से अब तुम लौटोगे नहीं। मेरे प्रिय पुत्र! मन को लुभाने वाली तुम्हारी आवाज न सुनने के कारण मैं अब जीवित नहीं रह सकती।"

राजा भी दहाड़ें मार के रोने लगे। चूँकि माता-पिता विलाप कर रहे थे, अतः उनके सभी साथी उनके साथ बालक की असामयिक मृत्यु पर क्रन्दन करने लगे। अचानक घटी दुर्घटना के कारण राज्य के शोक-संतप्त सभी नागरिक लगभग अचेत हो गये।

जब महर्षि अंगिरा की समझ में आया कि राजा शोक के सागर

में डूब कर मृतप्राय हो गये हैं, तो वे अपने मित्र नारदमुनि के साथ वहाँ गये।

दोनों ऋषियों ने देखा कि राजा शोक से अभिभूत होकर शव के पास मृतवत् लेटे पड़े हैं। अंगिरा ने तीव्र स्वर में राजा को पुकारा, "हे राजन्! अज्ञान के अन्धकार से जागो! इस मृत शरीर का तुम्हारे साथ क्या सम्बंध है और तुम्हारा उसके साथ क्या सम्बंध है? तुम कह सकते हो कि तुम्हारा अब पिता-पुत्र का सम्बंध है, परन्तु क्या तुम सोचते हो कि यह सम्बंध इसके जन्म से पहले था? क्या यह सम्बंध वास्तव में अभी भी है? अब जबकि इसकी मृत्यु हो गई है, क्या वह सम्बंध बना रहेगा? हे राजन्! जैसे समुद्र की लहरों की शक्ति के कारण रेत के क्षुद्र कण कभी समीप आ जाते हैं तो कभी अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव, जिन्होंने भौतिक शरीर ग्रहण किये हैं, काल की शक्ति से कभी साथ आ जाते हैं तो कभी अलग हो जाते हैं।" अंगिरा राजा को समझाना चाहते थे कि शरीर के सारे सम्बंध अस्थायी हैं।

ऋषि कहते गये, "मेरे प्रिय राजन्! जब मैं पहले तुम्हारे राजमहल में आया था, मैं तुम्हें सर्वश्रेष्ठ वरदान अर्थात् दिव्य ज्ञान दे सकता था, परन्तु जब मैंने देखा कि तुम्हारा मन भौतिक वस्तुओं में लिप्त है, मैंने तुम्हें केवल एक पुत्र दिया जो तुम्हारे लिए हर्ष और शोक का कारण बना। अब तुम एक ऐसे मनुष्य का दुःख अनुभव कर रहे हो, जिसको पूत्र और पुत्रीयां होते हैं। ये स्त्री, बच्चे और सम्पत्ति जैसे दृश्यमान् पदार्थ स्वप्न से अधिक कुछ नहीं हैं। हे राजा चित्रकेतु! इसलिए तुम समझने का प्रयास करो कि तुम वास्तव में कौन हो। सोचो कि तुम कहाँ से आये हो, इस शरीर को छोड़ने के बाद कहाँ जाओगे और तुम किस कारण भौतिक शोक के वश में हो गये हो।"

तब नारद मुनि ने एक आश्चर्यजनक कार्य किया। अपनी यौगिक शक्ति से उन्होंने राजा के मृत पुत्र की आत्मा को सब के सामने

दृष्टिगोचर कर दिया। तत्काल, वह कक्ष चौंधिया देने वाले आलोक से भर उठा, और मृत बालक हिलने-डुलने लगा। नारद ने कहा, "हे जीवात्मा! तुम्हें समस्त सौभाग्य प्राप्त हों। अपने माता-पिता को देखो। तुम्हारी मृत्यु के कारण तुम्हारे सारे मित्र और सम्बंधी शोकाकुल हो रहे हैं। तुम्हारी अकाल मृत्यु के कारण तुम्हारा शेष जीवन अभी बचा हुआ है। इसलिए तुम अपने शरीर में पुनः प्रवेश कर सकते हो, और अपने मित्रों और सम्बन्धियों के साथ इस जीवन के निर्धारित वर्षों में से शेष वर्षों का भोग कर सकते हो, और बाद में तुम्हारे पिता द्वारा दी गयी राजसिंहासन व सम्पूर्ण ऐश्वर्य स्वीकार कर सकते हो।"

नारद की यौगिक शक्ति के कारण, जीवात्मा ने मृत शरीर में पुनः प्रवेश किया। मृत बालक उठ बैठा और छोटे बालक की बुद्धि के साथ नहीं बल्कि एक मुक्त आत्मा के पूर्ण ज्ञान के साथ बोलने लगा, "अपने भौतिक कर्मों के फलों के अनुसार, मैं जीवात्मा, एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण करता हूँ और कभी देव-योनियों में, कभी निम्न पशु-योनियों में, कभी वनस्पतियों में तो कभी मनुष्य-योनियों में जन्म लेता हूँ। मेरे किस जन्म में ये दोनों व्यक्ति मेरे माता-पिता थे? सच तो यह है कि मेरा कोई माता-पिता नहीं है। मेरे असंख्य माता-पिता रह चुके हैं। मैं इन्हीं दो को अपने माता-पिता कैसे स्वीकार कर सकता हूँ?"

वेदों की शिक्षा है कि सनातन जीवात्मा भौतिक तत्त्वों से निर्मित शरीर में प्रवेश करता है। यहाँ हम देखते हैं कि ऐसे ही एक जीवात्मा ने राजा चित्रकेतु और उसकी पत्नी द्वारा उत्पन्न किये गये शरीर में प्रवेश किया। फिर भी, वह वास्तव में उनका पुत्र नहीं था। जीव भगवान् का सनातन पुत्र है, परन्तु वह इस भौतिक संसार का भोग करना चाहता है, अतः भगवान् उसे विविध शरीरों में प्रवेश करने का अवसर देते हैं। तथापि विशुद्ध जीवात्मा का अपने माता-पिता से प्राप्त भौतिक शरीर से

कोई वास्तविक सम्बंध नहीं होता है। इसलिए उस आत्मा ने जिसने चित्रकेतु के पुत्र के शरीर को धारण किया था इस बात को मानने से साफ इनकार कर दिया कि राजा और रानी उसके माता-पिता हैं।

उस आत्मा ने आगे कहा, "यह भौतिक संसार, जो एक तेजी से बहती नदी के समान है, इसमें सभी लोग समयानुसार मित्र, सम्बंधी और शत्रु हो जाते हैं। वे तटस्थ रहकर भी व्यवहार करते हैं और अन्य अनेक सम्बंधों के अनुरूप भी। किन्तु इन विविध व्यवहारों के बावजूद भी, किसी का किसी से स्थायी सम्बंध नहीं होता है।"

चित्रकेतु अपने पुत्र के लिए विलाप कर रहा था, जो अब मर चुका था, परन्तु वह इस स्थिति पर एक अन्य प्रकार से भी विचार कर सकता था। वह सोच सकता था, "यह जीवात्मा पूर्व-जन्म में मेरा शत्रु था और अब पुत्र के रूप में पैदा होकर, वह मुझे सिर्फ दुःख व शोक देने के लिए असमय छोड़े जा रहा है।" राजा को अपने मृत पुत्र को अपना पूर्व-शत्रु क्यों नहीं समझना चाहिए, और शोकाकुल होने के बजाय एक शत्रु की मृत्यु पर उल्लसित क्यों नहीं होना चाहिए?

चित्रकेतु के पुत्र के शरीरस्थ जीवात्मा ने कहा, "जिस प्रकार स्वर्ण और दूसरी वस्तुएँ क्रय-विक्रय के द्वारा निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरित की जाती हैं, उसी प्रकार जीव अपने कर्माधीन होकर एक के बाद दूसरे पिता के वीर्य द्वारा विविध योनियों में शरीर धारण करता हुआ ब्रह्माण्ड भर में भ्रमण करता है।"

जैसा कि भगवद्गीता में व्याख्या की गई है, किसी पिता अथवा माता के कारण जीव जन्म नहीं लेता। जीवात्मा का निजी, सच्चा स्वरूप तथाकथित माता-पिता से पूरी तरह अलग है। प्रकृति के विधान से आत्मा, पिता के वीर्य में प्रवेश के लिए विवश होता है और माता के गर्भ में डाला जाता है। उसे कैसा पिता मिलेगा, यह उसके प्रत्यक्ष नियन्त्रण में नहीं है। यह उसके पूर्व-जन्मों के कर्मों द्वारा स्वतः ही

२

ममता का शिकार

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने और अनुपयोगी देहों को छोड़ते हुए नये भौतिक शरीरों को अपनाता है।

—भगवद्गीता २.२२

ईसा पूर्व की पहली शताब्दी में रोमन कवि ओविड ने निम्नलिखित काव्य-पंक्तियाँ लिखी थीं, जिनमें उन्होंने एक अभागे मनुष्य के दुर्भाग्य का वर्णन किया था, जो अपने कर्मों और इच्छाओं के कारण विकास के सोपान में कुछ सीढ़ियाँ नीचे खिसक आया था।

मुझे यह बतलाते लज्जा आती है, पर मैं बताऊँगा—
मेरे ऊपर कठोर चुभने वाले बाल उग आये थे।
मैं बोल नहीं सकता था, लेकिन केवल गुर्राती ध्वनियाँ
निकलती थीं, शब्दों के बजाय।
मुझे लगा, मेरा मुँह कठोर होता जा रहा था।
नाक के स्थान पर टोंटी थी,
और, मेरा चेहरा जमीन को देखने के लिए झुक गया था।
मेरी गर्दन बड़ी-मोटी पेशियों से फूल गई थी,
और वह हाथ जो प्याले को होठों तक उठाता था
अब जमीन पर पग-चिह्न बनाता था।

—मेटामॉर्फोसिस

ओविड के समय से लगभग तीन हजार वर्ष पहले रचे गए श्रीमद्भागवतम् में निम्नलिखित अद्भुत् उपाख्यान है, जो पुनर्जन्म के सिद्धान्तों की क्रिया को नाटकीय ढंग से बताता है। भारतवर्ष के महान् और धर्मात्मा सम्राट् भरत को एक हिरन के प्रति अपनी अत्यधिक आसक्ति के कारण मनुष्य-रूप पुनः पाने से पूर्व एक जन्म हिरन के शरीर में बिताना पड़ा था।

राजा भरत एक बुद्धिमान् और अनुभवी महाराज थे, जिनके बारे में सोचा जा सकता था कि वे सैकड़ों वर्षों तक राज्य करेंगे, परन्तु अपने यौवन-काल में ही उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया—अपनी रानी, परिवार तथा विशाल साम्राज्य—और वे वन को चले गये। ऐसा करने में वे प्राचीन भारतवर्ष के महान् ऋषियों की शिक्षाओं का पालन कर रहे थे, जो जीवन के अन्तिम भाग को आत्म-साक्षात्कार हेतु लगाने की संस्तुति करते हैं।

राजा भरत जानते थे कि महान् सम्राट् के रूप में उनकी स्थिति स्थायी नहीं है; इसलिए उन्होंने मरणपर्यन्त राजगद्दी से चिपके रहने की चेष्टा नहीं की। अन्ततः राजा का शरीर भी मिट्टी, राख, या कीड़ों और अन्य पशुओं का भोजन बनता है। परन्तु शरीर के भीतर अविनाशी आत्मा, विशुद्ध 'स्व' है। योगसाधना के द्वारा आत्मा को अपने विशुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप के प्रति जाग्रत किया जा सकता है। एक बार यदि यह हो गया, तो आत्मा को भौतिक शरीर के भीतर कारावास की एक और अवधि बिताना आवश्यक नहीं होता।

यह समझते हुए कि जीवन का परम लक्ष्य पुनर्जन्म के चक्र से स्वयं को मुक्त करना है, राजा भरत हिमालय की तराई में स्थित पुलह-आश्रम नामक एक पवित्र तीर्थस्थान में गए। वहाँ भूतपूर्व राजा गंडकी नदी के तट पर वन में एकान्त वास करने लगे। राजसी वेश की जगह, वे अब केवल हिरन की खाल के वस्त्र पहनते। उनके केश और दाढ़ी

लम्बे और जटा जैसे हो गये, जो सदैव गीले मालूम पड़ने लगे, क्योंकि वे दिन में तीन बार नदी में स्नान करते थे।

प्रतिदिन प्रातःकाल में भरत ऋग्वेद में वर्णित स्तोत्र का पाठ करके भगवान् की पूजा करते थे, और सूर्योदय के समय वे निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते थे : "भगवान् शुद्ध सत्त्व में स्थित हैं। वे समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करते हैं; अपनी विविध शक्तियों के द्वारा, वे भौतिक भोगों को चाहने वाले सभी जीवधारियों का पालन करते हैं, और वे अपने भक्तों को सब प्रकार के आशीर्वाद देते हैं।"

दिन में वे विविध फल और कंदमूल इक्कठ्ठा करते और ये साधारण भोज्य-पदार्थ वेद-शास्त्रों के निर्देशानुसार वे भगवान् कृष्ण को समर्पित करते, और तब उन्हीं को खाते। यद्यपि वे सांसारिक ऐश्वर्य से सम्पन्न महान् राजा रह चुके थे, अब उनके तपोबल से भौतिक भोगों के लिए उनकी सभी इच्छाएँ समाप्त हो गईं। इस प्रकार वे जन्म-मृत्यु-चक्र के बंधन के मूल कारण से मुक्त हो गये।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के निरंतर ध्यान से भरत को आध्यात्मिक आनन्द के लक्षणों की अनुभूति होने लगी। उनका हृदय आध्यात्मिक प्रेम-जल से पूर्ण झील की तरह हो गया, और जब उनका मन इस झील में स्नान करता, तब उनकी आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगते।

एक दिन जब नदी-तट पर भरत ध्यान कर रहे थे, एक हिरनी वहाँ पानी पीने आई। जब वह पानी पी रही थी, तब समीप ही वन में एक सिंह जोर से दहाड़ा। अत्यन्त भयभीत होकर वह उछली और नदी से दूर भागी। चूँकि हिरनी गर्भवती थी, भागने के कारण उसके गर्भ से एक बच्चा तेजी से बहती हुई नदी के जल में जा गिरा। भय से काँपती और गर्भपात से दुर्बल हो जाने के कारण, हिरनी एक गुफा में घुस गई, जहाँ वह शीघ्र ही मर गई।

ज्योंही ऋषि (भरत) ने हिरन के बच्चे को नदी में बहते हुए देखा, उनके हृदय में करुणा उत्पन्न हो गई। भरत ने मृग-शावक को पानी में से निकाल लिया और उसे मातृहीन जानते हुए, अपने आश्रम में ले आए। विद्वान् इन्द्रियातीत पुरुष की दृष्टि में शरीरों के भेद निरर्थक होते हैं; क्योंकि भरत स्वरूप-सिद्ध थे, और यह जानते हुए कि परमात्मा (परमेश्वर) और आत्मा दोनों ही समान रूप से सभी शरीरों में वास करते हैं, वे सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखते थे। वे हिरन को प्रतिदिन ताजी, हरी घास खिलाते और उसे आराम देने का प्रयास करते। परन्तु शीघ्र ही उनके मन में हिरन के प्रति प्रगाढ़ आसक्ति उत्पन्न होने लगी। वे इसके साथ लेट जाते, इसके साथ ही चलते, स्नान करते और यहाँ तक कि इसके साथ भोजन भी करते। जब वे वन में कन्द-फल-फूल इकठ्ठा करने के लिए प्रवेश करते, तब अपने साथ हिरन को ले जाते, इस भय से कि यदि उन्होंने उसे पीछे छोड़ दिया, तो उसे कुत्ते, गीदड़ या बाघ मार डालेंगे। हिरन को वन में बालक की तरह उछलते, खेल-कूद करते देख कर भरत को बड़ा आनन्द आता। कभी कभी वे हिरन के बच्चे को अपने कंधों पर उठा कर ले जाते। उनका हृदय हिरन के प्रेम से इतना भर उठा कि वे उसे दिन भर गोदी में बिठाते, और जब वे सोते तो हिरन उनकी छाती पर लेटता। वे हरदम हिरन को थपथपाते रहते, और कभी-कभी तो उसे चूम भी लेते। इस प्रकार उनका हृदय हिरन के प्रति प्रेम में बंध गया।

हिरन के पालन-पोषण में आसक्त होने के कारण, भरत धीरे-धीरे भगवान् के ध्यान की उपेक्षा करने लगे। इस प्रकार वे आत्म-साक्षात्कार के मार्ग से विचलित हो गये, जो कि मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। वेद हमें स्मरण कराते हैं कि निम्न योनियों में लाखों जन्म बिताने के बाद ही आत्मा को मानव-रूप प्राप्त होता है। इस भौतिक जगत् की तुलना कभी-कभी जन्म-मरण के समुद्र से की

जाती है और मानव-शरीर की तुलना उस दृढ़ नौका से की जाती है जो इस समुद्र को पार करने के लिए बनाई गयी है। वेद-शास्त्रों और सन्त-शिक्षकों अथवा गुरुओं को अनुभवी नाविकों से उपमा दी जाती है, और मानव-शरीर की सुविधाओं को अनुकूल हवाओं के समान माना जाता है, जो नाव को अभीष्ट गन्तव्य की ओर सरलता से चलने में सहायता करती हैं। यदि इन सभी सुविधाओं के होते हुए कोई मनुष्य अपने जीवन को आत्म-साक्षात्कार के लिए पूरी तरह उपयोग नहीं करता, तो वह आध्यात्मिक आत्महत्या का पाप करता है, और अगले जीवन में पशु-योनि में जन्म लेने का खतरा पैदा करता है।

यद्यपि भरत इन विचारों से परिचित थे, तथापि उन्होंने सोचा "चूँकि इस हिरन ने मेरी शरण ली है, मैं इसके प्रति उदासीन कैसे हो सकता हूँ? यद्यपि यह मेरे आध्यात्मिक जीवन में विघ्न पैदा कर रहा है, मैं इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। जिसने मेरी शरण ली है, ऐसे असहाय जीव की उपेक्षा करना घोर अपराध होगा।"

एक दिन जब भरत ध्यान कर रहे थे, वे सदा की तरह भगवान् के बजाय हिरन के बारे में सोचने लगे। अपनी एकाग्रता भंग करते हुए, उन्होंने अपने चारों ओर देखा कि हिरन कहाँ है और जब वह कहीं नहीं मिला, तो उनका मन इस तरह उद्विग्न हो उठा, जैसे किसी कंजूस का धन खो जाने पर होता है। वे उठ खड़े हुए और आश्रम के आस-पास के क्षेत्र में उसे खोजने लगे, परन्तु हिरन उन्हें कहीं न मिला।

भरत ने सोचा, "मेरा हिरन कब लौटेगा? क्या चीतों और दूसरे जानवरों से वह सुरक्षित है? मैं उसे अपने बगीचे में घूमते हुए और हरी-हरी नरम दूब चरते हुए दोबारा कब देखूँगा?"

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगा भरत चिन्ता से अभिभूत होने लगे। "क्या मेरे हिरन को किसी भेड़िये अथवा कुत्ते ने खा लिया है? क्या जंगली सूअरों के झुंड ने, अथवा किसी अकेले विचरते चीते ने उस

पर आक्रमण कर दिया है। सूर्य अस्त होने जा रहा है और वह बेचारा पशु, जिसने अपनी माँ के मरने के बाद से मुझ पर विश्वास किया था, अभी तक नहीं लौटा है।"

उन्हें याद आने लगा, किस तरह वह हिरन उनके साथ खेलता था, और अपने मुलायम, नरम रोयेदार सींगों की नोक को उनसे छुआता था। उन्हें याद आया, किस प्रकार वे अपनी ध्यान-पूजा में विघ्न डाले जाने से परेशान होने का बहाना करते हुए कभी-कभी उसे दूर धकेल देते थे और किस प्रकार वह भय के कारण तत्काल बिना हिले-डुले उनसे थोड़ी दूरी पर बैठ जाता था।

"मेरा हिरन सचमुच एक छोटे से राजकुमार की तरह है। हाय, वह दोबारा कब लौटेगा? वह मेरे आहत हृदय को पुन: कब शान्त करेगा?"

अपने को संयमित न रख सकने के कारण, भरत चाँदनी में उसके छोटे-छोटे पद-चिह्नों के पीछे पीछे उसकी खोज में निकल पड़े। पागलपन की दशा में वे अपने आप से बातें करने लगे : "यह प्राणी मुझे इतना प्रिय था कि मुझे लगता है, जैसे मैंने अपना ही पुत्र खो दिया है। बिछोह में जलाने वाले ताप के कारण मुझे ऐसा लगता है कि मैं स्वयं धधकती हुई दावाग्नि में फँसा हूँ। संताप से मेरा हृदय अब जल रहा है।"

किसी विक्षिप्त की भाँति वन के भयानक मार्गों में खोये हुए हिरन को खोजते हुए भरत अचानक गिर पड़े और उन्हें प्राणघातक चोट लगी। मृत्यु के क्षण में वहाँ पड़े हुए उन्होंने देखा कि उनका हिरन अकस्मात् वहाँ आ गया है और प्यारे बेटे की तरह पास बैठा हुआ उनकी ओर देख रहा है। इस प्रकार उनकी मृत्यु के क्षण में उनका मन हिरन पर पूर्ण-रूप से केन्द्रित हो गया। भगवद्गीता से हमने सीखा है; "शरीर त्याग करते समय मन में जिन-जिन भावों का स्मरण कोई करता है, वही स्थिति निश्चित रूप से उसे प्राप्त होगी।"

राजा भरत हिरन का जन्म लेते हैं

अगले जन्म में राजा भरत ने हिरन के शरीर में प्रवेश किया। अधिकतर जीव अपने विगत जन्मों को स्मरण नहीं कर पाते, परन्तु राजा भरत पूर्व जन्म में की हुई आध्यात्मिक उन्नति के कारण, हिरन के शरीर में होने पर भी उस शरीर में अपने जन्म लेने का कारण समझ सके। वे विलाप करने लगे, "मैं कितना मूर्ख हूँ। मैं आत्म-साक्षात्कार के मार्ग से गिर गया हूँ। मैंने अपने परिवार और राज्य का त्याग किया और वन में एकान्त पवित्र स्थान में ध्यान के लिए चला आया, जहाँ मैंने ब्रह्मांड के स्वामी भगवान् का निरन्तर ध्यान किया। किन्तु अपनी मूर्खता के कारण, मैंने अपने मन को, सब कुछ छोड़ कर, एक हिरन में आसक्त होने दिया। अत: यह उचित ही है कि मुझे अब वही शरीर प्राप्त हुआ है। अपने अतिरिक्त, मैं किसी को दोष नहीं दे सकता।"

परन्तु हिरन के रूप में भी भरत एक मूल्यवान् पाठ सीख कर अपने आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में प्रगति करते रहे। वे सभी भौतिक इच्छाओं से विरक्त हो गये। वे अब रसीली, हरी घास की चिन्ता कभी न करते, न ही वे कभी यह सोचते कि उनके सींग कितने लम्बे होंगे। इसी प्रकार अपनी माता को कालंजर पर्वतों में छोड़कर, जहाँ वे पैदा हुए थे, उन्होंने समान रूप से नर और मादा, सभी हिरनों का संग त्याग दिया। वे पुलह-आश्रम में लौट आये, जो वही स्थान था जहाँ पूर्व-जन्म में उन्होंने ध्यान-साधना की थी। परन्तु इस बार वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को कभी न भूलने के प्रति सावधान रहते थे। महान् सन्तों और ऋषियों के आश्रमों के समीप रहते हुए और भौतिकतावादियों से सभी तरह के सम्पर्क से अपने को बचाते हुए, वे बहुत सादा जीवन बिताते और सूखे, कड़े पत्ते ही खाते। जब मृत्यु का समय आया, और भरत हिरन का शरीर त्यागने लगे, तब उन्होंने ऊँचे स्वर में यह प्रार्थना

की : "पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् सम्पूर्ण ज्ञान के स्रोत हैं, सम्पूर्ण सृष्टि के नियन्ता हैं, और सभी प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले परमात्मा हैं। वे सुन्दर और मनोहारी हैं। मैं उनको प्रणाम करता हुआ इस शरीर को छोड़ रहा हूँ और यह आशा करता हूँ कि मैं निरन्तर उनकी दिव्य प्रेममय भक्ति-सेवा में लगा रहूँ।"

जड़ भरत का जीवन

अगले जीवन में राजा भरत ने एक विशुद्ध सन्त जैसे ब्राह्मण पुरोहित के घर में जन्म लिया और वे जड़भरत के नाम से जाने जाते थे। भगवान् की दया से उन्हें फिर से अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण था। भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है, "स्मृति, ज्ञान और विस्मरण मुझ से ही प्राप्त होते हैं।" ज्यों-ज्यों वे बड़े होते गये, जड़भरत अपने मित्रों और सम्बन्धियों से अत्यन्त भयभीत रहने लगे, क्योंकि वे लोग बहुत ही भौतिकतावादी थे और अपनी आध्यात्मिक प्रगति में उन लोगों की तनिक भी रुचि नहीं थी। बालक निरन्तर चिन्ता में रहता, क्योंकि उसे भय था कि उन लोगों के प्रभाव से वह पुन: पशु-जीवन में न गिर जाए। अत: अत्यन्त बुद्धिमान् होने पर भी, वे एक पागल मनुष्य की तरह व्यवहार करते। वे मूर्ख, अन्धा और बहरा होने का स्वाँग करते, जिससे संसारी लोग उनसे बात करने का प्रयास न करें। परन्तु अपने भीतर वे भगवान् के विषय में सदैव सोचते रहते और उनकी महिमाओं का गान करते रहते, क्योंकि यही बारम्बार होने वाले जन्म-मृत्यु के चक्र से मनुष्य को बचा सकता है।

जड़भरत के पिता उनसे बहुत स्नेह करते थे, और वे अपने मन ही मन आशा करते थे कि जड़भरत एक दिन सुशिक्षित विद्वान् बन जाएँगे। अत: उन्होंने वैदिक ज्ञान की जटिलताओं को उन्हें समझाने

का प्रयास किया। परन्तु जड़भरत जानबूझ कर मूर्ख-जैसा व्यवहार करते थे, जिससे उनके पिता उन्हें शिक्षा देने के अपने प्रयत्नों को छोड़ दें। यदि उनके पिता उन्हें कुछ करने को कहते, तो वे उसके बिल्कुल विपरीत करते। ऐसा होते हुए भी, जड़भरत के पिता मृत्युपर्यंत बालक को शिक्षा देने का सदा प्रयास करते रहे।

जड़भरत के नौ सौतेले भाई उन्हें बुद्धिहीन और मूर्ख समझते थे और जब उनके पिता मर गये, तो उन्होंने जड़भरत को शिक्षा देने के सभी प्रयास छोड़ दिये। वे जड़भरत की आंतरिक आध्यात्मिक उन्नति को समझ नहीं सके। परन्तु जड़भरत उनके दुर्व्यवहार के विरुद्ध कभी प्रतिवाद न करते, क्योंकि वे देहात्मबुद्धि से पूर्णतया मुक्त हो चुके थे। जो भोजन उन्हें मिल जाता, वे उसे स्वीकार करते और खा लेते, चाहे वह अधिक हो या कम, सुस्वादु हो या बेस्वाद। वे पूर्ण आध्यात्मिक चेतना में स्थित थे, अत: वे गर्मी और सर्दी जैसे भौतिक द्वन्द्वों से व्यग्र नहीं होते थे। उनका शरीर साँड की तरह सशक्त था और उनके हाथ-पाँव अत्यन्त बलिष्ट थे। वे शीत ऋतु की सर्दी और ग्रीष्म ऋतु की गर्मी, वायु और वर्षा, किसी की परवाह नहीं करते थे। चूँकि उनका शरीर सदा मलिन रहता, अत: उनका आध्यात्मिक ज्ञान और उनकी ओजस्विता, मैल और मिट्टी से ढके किसी मूल्यवान् रत्न की भाँति ढक गये थे। प्रतिदिन साधारण लोग उनको अपमानित और तिरस्कृत करते थे, जो उन्हें बेकार मूर्ख से अधिक कुछ नहीं समझते थे।

जड़भरत को पारिश्रमिक में मिलता था, उनके भाइयों द्वारा दिया गया बेस्वाद, थोड़ा-सा भोजन, जो खेतों में किसी बँधुआ मजदूर की तरह उनसे काम लेते थे। परन्तु जड़भरत मामूली-सा काम भी ठीक से नहीं कर पाते थे, क्योंकि उन्हें मालूम नहीं था कि मिट्टी कहाँ फैलाई जाये अथवा भूमि को कहाँ समतल बनाया जाये। भोजन के लिए उनके भाई उन्हें चावल की कणकी, चावल की छाँटन, खली, कीड़ों

द्वारा छाने गये दाने, पकाने के बर्तनों के तले चिपका रह जाने वाला जला हुआ अन्न देते, परन्तु जड़भरत उन्हें अमृत मान कर प्रसन्नता से स्वीकार कर लेते। उनके मन में कोई दुर्भाव नहीं होता था। इस प्रकार वे अपने व्यवहार में पूर्ण आत्म-साक्षात्कार कर चुके जीव के सभी लक्षण प्रदर्शित करते थे।

एक समय चोरों और हत्यारों के एक गिरोह का मुखिया भद्रकाली के मंदिर में एक ऐसे मनुष्य की बलि देने के लिए गया जो पशुवत् जड़ और बुद्धिहीन हो। ऐसी बलियों का *वेदों* में कहीं भी वर्णन नहीं है, किन्तु डाकुओं ने धन-सम्पदा प्राप्त करने के उद्देश्य से ऐसी मनगढ़न्त बलि-प्रथा बना ली थी। किन्तु जब वह पुरुष जिसकी बलि चढ़ाई जानी थी, बच कर भाग निकला, तब उनकी योजना विफल हो गई। अत: डाकुओं के सरदार ने उसे खोजने के लिए अपने अनुचरों को भेजा। अंधेरी रात में खेतों और जंगलों में खोजते हुए डाकू एक धान के खेत में आये और उन्होंने जड़भरत को देखा, जो जंगली सूअरों के आक्रमण से खेत की रखवाली करने के लिए ऊँची मचान पर बैठे थे। डाकुओं ने सोचा कि जड़भरत पूर्णरूप से बलि के योग्य होगा। प्रसन्नता से उनके मुख चमक उठे, और उन्होंने मजबूत रस्सियों से उन्हें बाँध लिया, और वे उन्हें कालीदेवी के मंदिर में ले आये। भगवान् के द्वारा अपनी रक्षा किए जाने के प्रति पूर्ण निष्ठा के कारण जड़भरत ने कोई विरोध नहीं किया। एक विख्यात आचार्य (आध्यात्मिक गुरु) द्वारा रचित एक गीत है, "हे भगवान्! मैं अब आपको समर्पित हूँ। मैं आपका सनातन दास हूँ, आप चाहें तो मुझे मार सकते हैं अथवा रक्षा कर सकते हैं। प्रत्येक दशा में, मैं आपका पूर्णरूपेण शरणागत हूँ।"

डाकुओं ने जड़भरत को स्नान करवाया, उन्हें नए रेशमी परिधान पहनाये और उन्हें मालाओं और आभूषणों से अलंकृत किया। उन्होंने उनको भरपेट अन्तिम भोजन करवाया और वे उन्हें देवी के सम्मुख

ले आये, जिनकी उन्होंने गीतों और स्तुतियों से पूजा की। जड़भरत को देवी के सम्मुख बैठने को विवश कर दिया गया। तब उन चोरों में से एक ने प्रमुख पुजारी की भूमिका निभाते हुए, जड़भरत के गले को काटने के लिए उस्तरे जैसी तेज धार वाली तलवार को उठाया जिससे वे काली देवी को (जड़भरत का) गर्म रुधिर, मदिरा के रूप में अर्पित कर सकें।

परन्तु देवी इसे न सह सकी। वे समझ गईं कि पापी चोर भगवान् के एक महान् भक्त को मारने जा रहे हैं। अकस्मात्, देवी का विग्रह फट गया और प्रचण्ड एवं असह्य तेज से जलते हुए शरीर वाली देवी साक्षात् प्रकट हो गईं। क्रुद्ध देवी ने अपनी जलती आँखें चमकाईं और अपने विकराल, वक्रदन्त दिखलाये। उनकी आँखें व रक्तवस्त्र दमदमाये, और ऐसा लगा कि वे समूचे विश्व को नष्ट करने के लिए तत्पर हैं। वेदी पर से विकराल रूप से छलांग लगाते हुए, उन्होंने उन सभी चोरों और बदमाशों के सिर उसी तलवार से काट डाले, जिससे वे सन्त जड़भरत को मारना चाहते थे।

राजा रहूगण को जड़भरत का उपदेश

काली-मंदिर से बच निकलने के पश्चात् जड़भरत ने अपना परिभ्रमण चालू रखा। वे साधारण भौतिकतावादी मनुष्यों से दूर रहते थे।

एक दिन, जब सौवीर के राजा रहूगण कई दासों के कंधों पर उठाई जा रही पालकी में उस जिले में से ले जाये जा रहे थे, तब वे पुरुष थके होने के कारण लड़खड़ाने लगे। यह जानकर कि इक्षुमती नदी को पार करने में सहायता के लिए उन्हें एक और व्यक्ति की आवश्यकता होगी, राजा के सेवकों ने किसी और व्यक्ति की खोज करनी प्रारम्भ कर दी। इतने में ही उनकी नजर जड़भरत पर पड़ी, जो युवा और बैल की तरह बलिष्ट होने के कारण उचित व्यक्ति प्रतीत

हुए। परन्तु जड़भरत सभी प्राणियों को भ्रातृवत् मानते थे, अत: वे यह काम भलीभाँति न कर सके। जब वे चलते, वे यह निश्चित करने को रुक जाते कि कहीं उनके पैर चींटियों पर तो नहीं पड़ रहे हैं। पुनर्जन्म के सूक्ष्म, किन्तु निश्चित विधानों के अनुसार उच्चतर योनि को प्राप्त करने से पूर्व सभी जीवधारियों को विशिष्ट कालाविधि के लिए एक विशिष्ट शरीर में रहना पड़ता है। जब एक पशु को निर्धारित समय से पूर्व मार दिया जाता है, तो आत्मा को उसी प्रकार के शरीर के पिंजरे में अपना वास पूरा करने के लिए उसी योनि में लौटना पड़ता है। अतएव वेदों का यह आदेश है कि प्रत्येक मनुष्य को मनमाने ढंग से दूसरे प्राणियों की हत्या करने से सदा बचना चाहिए।

विलम्ब क्यों हो रहा है, यह न जानते हुए राजा रहूगण चिल्लाया, "यह क्या हो रहा है? क्या तुम इसे ठीक तरह नहीं उठा सकते? मेरी पालकी इस तरह क्यों हिलडुल रही है?"

राजा की धमकी भरी आवाज सुनकर, भयभीत सेवकों ने उत्तर दिया कि यह अव्यवस्था जड़भरत के कारण हो रही है। राजा ने क्रोध में आकर उन्हें डाँटा, और कटाक्षपूर्वक कहा कि जड़भरत पालकी को ऐसे ले जा रहे हैं जैसे कि वे अत्यन्त दुबले-पतले, थके हुए बूढ़े व्यक्ति हों। परन्तु जड़भरत जो अपनी असली आध्यात्मिक वास्तविकता से परिचित थे, जानते थे कि वे शरीर नहीं हैं। न तो वो मोटे हैं, न पतले, और न उनका उस शरीर से कोई सरोकार है, जो मांस के लोथड़े और हड्डियों से बना है। वे जानते थे कि यंत्र के भीतर बैठे हुए चालक की तरह, वे शरीरस्थ सनातन आत्मा हैं। अत: जड़भरत राजा की क्रुद्ध आलोचना से अप्रभावित रहे। यदि राजा उनको मृत्युदण्ड भी देते, तो भी वे परवाह न करते, क्योंकि वे जानते थे कि आत्मा अमर है और इसे कभी मारा नहीं जा सकता। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, "शरीर के मारे जाने पर आत्मा नहीं मारा जाता।"

जड़भरत मौन रहे और पालकी को पूर्ववत् ढोते रहे, परन्तु राजा अपने क्रोध को वश में न रख सकने के कारण चिल्लाया, "ओ नीच बदमाश! तू यह क्या कर रहा है? क्या तू नहीं जानता कि मैं तेरा स्वामी हूँ? आज्ञा के उल्लंघन के कारण मैं तुझे अब दण्ड दूंगा।"

जड़भरत बोले, "मेरे प्रिय राजा! जो कुछ तुमने मेरे विषय में कहा है वह सच है। तुम यह समझते प्रतीत होते हो कि मैंने तुम्हारी पालकी को ढोने के लिए बहुत अधिक श्रम नहीं किया है। यह सच है, क्योंकि वास्तव में मैं तुम्हारी पालकी को बिल्कुल भी नहीं ढो रहा हूँ। इसे मेरा शरीर ढो रहा है, किन्तु मैं यह शरीर नहीं हूँ। तुम मुझे दोष देते हो कि मैं बहुत हट्टा-कट्टा और मजबूत नहीं हूँ, किन्तु इससे तुम्हारा आत्मा-सम्बंधी अज्ञान ही प्रकट होता है। शरीर मोटा या पतला, दुर्बल या बलिष्ट हो सकता है, परन्तु कोई भी विद्वान् अन्तरात्मा के विषय में ऐसा नहीं कह सकता। जहाँ तक मेरे आत्मा का सम्बंध है, न तो यह मोटा है और न दुबला; इसलिए तुम सच ही कह रहे हो कि मैं बहुत मजबूत नहीं हूँ।"

तब जड़भरत यह कहते हुए राजा को उपदेश देने लगे कि, "तुम समझते हो कि तुम अधिपति हो, मालिक हो और इसीलिए तुम मुझे आदेश देने की चेष्टा कर रहे हो, परन्तु यह भी सही नहीं है क्योंकि ये सारे पद क्षणभंगुर हैं। आज तुम राजा हो और मैं तुम्हारा दास हूँ परन्तु हमारे अगले जन्मों में यह स्थिति उलट सकती है; तुम मेरे दास और मैं तुम्हारा स्वामी हो सकता हूँ।"

जिस प्रकार समुद्र की लहरें तिनकों को एक साथ ले आती हैं, और फिर उन्हें अलग अलग कर देती हैं, उसी प्रकार सनातन काल की शक्ति प्राणियों को अस्थायी सम्बंधों में जोड़ देती है, जैसे कि स्वामी और दास, और फिर उन्हें अलग कर देती है, और उनकी पुनर्व्यवस्था करती है।

जड़भरत बोलते गये : "किसी भी दशा में, कौन स्वामी है और कौन दास? भौतिक प्रकृति के विधान के अनुरूप प्रत्येक प्राणी कर्म करने के लिए विवश है; अतएव न तो कोई स्वामी है, और न कोई दास।"

वेदों ने व्याख्या की है कि इस भौतिक जगत् में मनुष्य रंगमंच के पात्रोंकी तरह हैं, जो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के निर्देशन के अनुसार अभिनय करते हैं। मंच पर कोई पात्र स्वामी का अभिनय कर सकता है, तो दूसरा उसके नौकर का। परन्तु वास्तव में वे दोनों ही निर्देशक के दास हैं। इसी प्रकार, सभी प्राणी भगवान् श्रीकृष्ण के दास हैं। भौतिक जगत् में स्वामी और नौकर के उनके अभिनय, अस्थायी और प्रतिबिम्ब-स्वरूप हैं।

राजा रहूगण को यह सब बताने के बाद, जड़भरत ने कहा, "यदि तुम अब भी समझते हो कि तुम स्वामी हो और मैं नौकर हूँ, तो मैं इसे मान लेता हूँ। कृपया आदेश दो। मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?"

राजा रहूगण जो अध्यात्म-विज्ञान में प्रशिक्षित थे, जड़भरत के उपदेश सुनकर चकित रह गये। यह समझ कर कि जड़भरत एक सन्त व्यक्ति हैं, राजा तत्काल पालकी से उतर गए। अपने विषय में महान् सम्राट् होने की उनकी भौतिक संकल्पना समाप्त हो गई, और उस सन्त पुरुष के चरणों में सिर रख कर, वे नम्रतापूर्वक साष्टांग प्रणाम करते हुए अपने शरीर को पृथ्वी पर फैला कर लेट गये।

"हे सन्त महात्मन्! आप संसार में अज्ञात रूप में विचरण क्यों कर रहे हैं? आप कौन हैं? आप कहाँ रहते हैं? आप इस स्थान पर किस कारण से आये हैं? हे गुरुदेव! मैं आध्यात्मिक-ज्ञान में अंधा हूँ। कृपया उपदेश दें कि मैं आध्यात्मिक जीवन में कैसे उन्नति करूँ।"

राजा रहूगण का व्यवहार अनुकरणीय है। वेद घोषणा करते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह राजा हो, आत्म-ज्ञान और पुनर्जन्म की प्रक्रिया को समझने के लिए आध्यात्मिक गुरु के पास जाना चाहिए।

जड़भरत ने उत्तर दिया, "क्योंकि जीव का मन भौतिक वासनाओं से भरा होता है, अत: वह भौतिक जगत् में भौतिक कार्यों से उत्पन्न सुख-दु:ख को भोगने के लिए विविध शरीर धारण करता है।"

जब व्यक्ति रात में सोता है, तब उसका मन सुख-दु:ख की स्वप्न-जैसी अनेक स्थितियाँ पैदा कर लेता है। कोई मनुष्य स्वप्न देख सकता है कि वह किसी सुन्दरी के साथ रमण कर रहा है, परन्तु यह सुख भ्रामक है। स्वप्न में वह यह भी देख सकता है कि एक चीता उसका पीछा कर रहा है, परन्तु जो चिन्ता वह अनुभव करता है, वह भी अवास्तविक होती है। इसी तरह, भौतिक आनन्द और कष्ट मात्र मन की उपज हैं, जिसका आधार है भौतिक शरीर और भौतिक सम्पत्ति के साथ हमारी पहचान। जब मनुष्य की मूल, आध्यात्मिक चेतना जाग्रत हो जाती है, तब उसे पता लगता है कि इन बातों से उसे कुछ भी लेना-देना नहीं है। भगवान् के ध्यान में अपना मन केन्द्रित करके वह ऐसा कर सकता है।

यदि कोई भगवान् में निरन्तर मन नहीं लगा पाता और उनकी सेवा नहीं कर पाता, तो उसे जड़भरत द्वारा वर्णित जन्म-मृत्यु के चक्र को भोगना पड़ेगा।

जड़भरत ने बताया, "मन की स्थिति के कारण विविध प्रकार के शरीरों में जन्म होते हैं। ये शरीर अनेक जीव-योनियों के हो सकते हैं, क्योंकि जब मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान को समझने के लिए मन का उपयोग करता है, तब उसे उच्चकोटि का शरीर मिलता है, और जब वह केवल भौतिक सुखों को भोगने के लिए इसका उपयोग करता है, तब उसे निम्नकोटि का शरीर मिलता है।"

जड़भरत ने मन की तुलना दीपक की लौ से की। "जब लौ बत्ती को गलत ढंग से जलाती है, तब दीपक काजल से काला हो जाता है। परन्तु यदि दीपक घी से भरा हो और लौ ठीक तरह से जले, तो

दीपक से तेज प्रकाश उत्पन्न होता है। भौतिक जीवन में लिप्त मन से पुनर्जन्म के चक्र में अनन्त दु:ख पैदा होते हैं। परन्तु जब मन आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन में लगाया जाता है, तो इससे आध्यात्मिक जीवन का मौलिक प्रकाश उत्पन्न होता है।"

जड़भरत ने तब राजा को सचेत करते हुए कहा, "जब तक मानव अपने भौतिक शरीर के साथ पहचान बनाए रखता है, तब तक अनन्त ब्रह्माण्डों की विविध योनियों में उसे परिभ्रमण करना ही पड़ता है। इसलिए अनियंत्रित मन जीव का सबसे बड़ा शत्रु है।

"प्रिय राजा रहूगण! जब तक बद्ध आत्मा भौतिक शरीर को स्वीकार करता है, और भौतिक भोगों के विकार से मुक्त नहीं हो जाता, और जब तक वह अपनी इन्द्रियों और मन को जीत नहीं लेता, और अपने आध्यात्मिक ज्ञान को जगा कर आत्म-साक्षात्कार के स्तर पर नहीं आ जाता, तब तक वह इसी भौतिक संसार में विभिन्न स्थानों और विभिन्न रूपों में चक्कर काटने के लिए विवश रहता है।"

जड़भरत ने तब अपने पूर्व-जन्मों का रहस्य खोला, "मुझे अपने पूर्व-जन्म में राजा भरत के नाम से जाना जाता था। भौतिक क्रिया-कलापों से पूर्णतया विरक्त होकर मैंने सिद्धि प्राप्त की। मैं प्रभु की सेवा में पूरी तरह से लग गया था, परन्तु मैंने मन पर अपना नियंत्रण ढीला कर दिया और एक छोटे-से हिरन के प्रति मैं इतना आसक्त हो गया कि मैं अपने आध्यात्मिक कर्तव्यों की उपेक्षा करने लगा। मृत्यु के समय मैं इस हिरन के सिवाए कुछ और सोच ही नहीं सका। इसलिए अगले जीवन में मुझे हिरन का शरीर स्वीकार करना पड़ा।"

अपने उपदेश का समापन करते हुए जड़भरत ने राजा को बताया कि जो लोग पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा चाहते हैं, उन्हें आत्म-साक्षात्कार कर चुके भगवद्भक्तों की सदैव संगति करनी चाहिए। केवल भगवान् के श्रेष्ठ भक्तों की संगति करके ही ज्ञान की पूर्णता प्राप्त

की जा सकती है और इस भौतिक जगत् की भ्रामिक संगति को विखंडित किया जा सकता है।

जब तक मनुष्य को भगवान् के भक्तों की संगति का अवसर नहीं मिलता, तब तक वह आध्यात्मिक जीवन के विषय में प्रारंभिक बात को समझने में भी असमर्थ रहेगा। जिसे महान् भक्त की कृपा प्राप्त होती है, उसी को परम सत्य प्रकट होता है, क्योंकि विशुद्ध भक्तों की सभा में राजनीति और समाजशास्त्र जैसे भौतिक विषयों पर चर्चा का प्रश्न ही नहीं उठता है। विशुद्ध भक्तों की मंडली में केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ही गुणों, रूपों और लीलाओं की चर्चा होती है, तथा पूर्ण श्रद्धा के साथ उनकी पूजा और स्तुति की जाती है। यह एक सरल रहस्य है जिसके द्वारा प्रसुप्त आध्यात्मिक चेतना को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है, सदा के लिए पुनर्जन्म के भयावह चक्र को समाप्त किया जा सकता है और आध्यात्मिक लोक के सनातन आनन्द के जीवन की ओर लौटा जा सकता है।

महान् भक्त जड़भरत से उपदेश ग्रहण करने के पश्चात्, राजा रहूगण आत्मा की वैधानिक स्थिति से पूर्णतया परिचित हो गया, और उसने जीवन की देहात्मबुद्धि को पूरी तरह त्याग दिया, जो भौतिक संसार में जन्म-मृत्यु के अन्तहीन चक्र में शुद्ध आत्माओं को बांधे रखती है।

३

उस पार के आगन्तुक

जब मनुष्य शरीर का त्याग करता है, उस समय जिस भी आत्मस्थिति का वह स्मरण करता है, वही स्थिति निश्चित रूप से वह प्राप्त करेगा।

—भगवद्गीता ८.६

मृत्यु के पश्चात् आत्मा ज्योंही अपनी रहस्यमयी यात्रा के लिए प्रस्थान करता है, संसार के महान् धर्मों की परम्पराओं के अनुसार, वह वास्तविकता के दूसरे छोरों से आये हुए जीवों से मिलता है, जो उसे सहायता देते हैं, जैसे फरिश्ते, देवदूत, अथवा न्यायमूर्ति जो ब्रह्माण्डीय न्याय की तुला पर उसके पुण्य और पापों को तौलते हैं। मानव जाति के सांस्कृतिक इतिहास की सम्पूर्ण शृंखला में व्याप्त नाना प्रकार की धार्मिक कलाकृतियाँ इन दृश्यों का बोध कराती हैं। मिट्टी के एट्रस्कन बर्तनों के एक टुकड़े पर बनी एक चित्रकारी में ऐसी एक देवदूत को किसी गिरे हुए योद्धा की सेवा में जुटे हुए दिखाया गया है। मध्यकालीन युग की एक ईसाई पच्चीकारी में अपने हाथों में न्याय का तराजू पकड़े हुए गम्भीर संत माइकल का चित्रण है। बहुत से लोग जिनको आसन्न मृत्यु का अनुभव हुआ है, प्राय: इस प्रकार के प्राणियों से मिलने की बात करते हैं।

भारतवर्ष के वैदिक शास्त्रों से हम भगवान् विष्णु के दूतों के बारे में जानते हैं, जो मृत्यु के समय प्रकट होकर पवित्र आत्मा को वैकुण्ठ जगत् की ओर जाने वाले मार्ग में साथ चलते हैं। वेदों में मृत्यु के

देवता यमराज के भयानक दूतों की चर्चा भी है, जो पापात्मा को बलपूर्वक पकड़ कर भौतिक शरीर रूपी कारागार में अगला जन्म लेने के लिए तैयार करते हैं। इस ऐतिहासिक वर्णन में भगवान् विष्णु के दूत और यमराज के दूत अजामिल की आत्मा के भाग्य के विषय में इस निर्णय के लिए आपस में विवाद करते हैं कि उसे मुक्त किया जाए या पुनर्जन्म दिया जाए।

कान्यकुब्ज नामक नगर में सन्त-स्वभाव का एक युवा ब्राह्मण पुरोहित, अजामिल रहता था, जो एक वेश्या के प्रेम में फँसने के कारण आध्यात्मिक जीवन के मार्ग से गिर गया और अपने सभी सद्गुणों को खो बैठा। अपने पुरोहिताई के कर्तव्यों को त्याग कर, वह डाके डालकर और जुआ खेलकर अपनी जीविका कमाने लगा, और अपना जीवन कामाचार में बिताने लगा।

अठ्ठासी वर्ष का होने तक अजामिल को वेश्या से दस पुत्र हो चुके थे। उनमें से सबसे छोटे बालक का नाम नारायण था—जो भगवान् विष्णु के नामों में से एक नाम है। अजामिल का इस छोटे पुत्र के प्रति अत्यधिक लगाव था, और उसे बालक के चलने और बोलने की आरम्भिक चेष्टाओं को देखने में बहुत आनन्द आता था।

एक दिन, बिना चेतावनी के, मूर्ख अजामिल की मृत्यु का समय आ गया। भयभीत हुए उस बूढ़े ने अपने सामने भयंकर आकृतियाँ देखीं, जिनके चेहरे डरावने और कुरूप थे। ये सूक्ष्म प्राणी, जिनके हाथों में रस्सियाँ थीं, उसे मृत्यु के स्वामी यमराज के दरबार में बलपूर्वक ले जाने के लिए आये थे। इन भयावह प्रेत-जैसे जीवों को देखकर, अजामिल के होश उड़ गये, और पास में ही खेल रहे अपने प्रिय पुत्र के प्रेमवश वह जोर से चीखने लगा, "नारायण! नारायण!" आँसुओं से भरी आँखों के साथ अपने छोटे पुत्र के लिए रोते हुए उस महापापी अजामिल ने अनजाने ही भगवान् के पवित्र नाम का उच्चारण किया।

मरते हुए अजामिल द्वारा भावुकता के साथ पुकारे गए अपने स्वामी के नाम को सुन कर, भगवान विष्णु के दूत क्षणभर में ही वहाँ आ गये। वे भगवान् विष्णु जैसे ही दिखते थे। उनकी आँखें कमल-पुष्प की पंखुड़ियों जैसी थीं। वे चमकते सोने के मुकुट और चमचमाते पीत रेशमी वस्त्र धारण किये थे और उनके सुगठित शरीर नीले और दूध जैसे श्वेत कमलों की मालाओं से सजे थे। वे ताजा और युवा लगते थे और उनकी चकाचौंध कर देने वाली आभा ने अन्धेरे मृत्यु-कक्ष को प्रकाशमान कर दिया। उनके हाथों मे धनुष, बाण, तलवारें, शंख, गदाएँ, चक्र और कमल पुष्प थे।

विष्णुदूतों ने यमराज के दूतों को देखा, जो अजामिल के हृदय में से उसकी आत्मा को निकाल रहे थे। गूँजती हुई आवाजों में विष्णुदूत चिल्लाये, "रुक जाओ!"

यमदूत, जिनको पहले कभी किसी प्रकार के विरोध का सामना नहीं हुआ था, विष्णुदूतों के कठोर आदेश को सुन कर काँप उठे। उन्होंने पूछा : "आप कौन हैं? आप हमें क्यों रोकने का प्रयास कर रहे हैं? हम मृत्यु के स्वामी यमराज के दूत हैं।"

विष्णु के दूत मुस्कराये और मेघ के समान गरजते हुए गम्भीर स्वर में बोले : "यदि तुम सचमुच ही यमराज के दूत हो, तो हमें जन्म-मृत्यु के चक्र का अर्थ बताओ। हमें बताओ कि किसे इस चक्र में प्रवेश करना चाहिए और किसे नहीं?"

यमदूतों ने उत्तर दिया, "सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, देवता, चन्द्रमा, सन्ध्या, दिन, रात्रि, दिशाएँ, जल, पृथ्वी और परमात्मा अर्थात् हृदय में वास करने वाले प्रभु, ये सब समस्त जीवों के कर्मों के साक्षी होते हैं। जन्म-मृत्यु के चक्र में दण्डित किए जाने वाले वे लोग होते हैं, जिनकी अपने-अपने धार्मिक कर्तव्यों से भ्रष्ट होने की पुष्टि ये साक्षी करते हैं। इस जीवन में अपने धार्मिक अथवा अधार्मिक कर्मों के

अनुपात से अगले जन्म में अपने कर्मों की प्रतिक्रिया स्वरूप सुख-दुःख का फल भोगना होता है।''

प्रारम्भ में, जीव आध्यात्मिक लोक में भगवान् के नित्य दास के रूप में रहते हैं। परन्तु जब वे भगवान् की सेवा त्याग देते हैं, तब उन्हें भौतिक ब्रह्मांड में प्रवेश करना होता है, जो प्रकृति के तीन गुणों से बना है—सत्त्व, रजस् और तमस्। यमदूतों ने स्पष्ट किया कि वे जीव जो इस भौतिक जगत् को भोगना चाहते हैं, इन गुणों के अधीन हो जाते हैं और इन गुणों के साथ अपने-अपने विशिष्ट सम्बंध के अनुसार, उपयुक्त भौतिक शरीर प्राप्त करते हैं। सत्त्वगुण प्रधान प्राणी देव-शरीर प्राप्त करता है, रजोगुणी मानव शरीर ग्रहण करता है और तमोगुणी निम्न योनियों में जन्म लेता है।

ये सभी शरीर उन शरीरों की भाँति है, जिनका अनुभव हम स्वप्नों में करते हैं। जब आदमी सो जाता है, वह अपनी असली पहचान भूल जाता है और स्वप्न देख सकता है कि वह राजा हो गया। सोने से पहले वह क्या कर रहा था, इसे वह याद नहीं रख पाता और न ही उसे इस बात की कल्पना हो सकती है कि जागने के बाद वह क्या करेगा। उसी तरह, जब आत्मा किसी अस्थायी भौतिक शरीर के साथ पहचान बना लेता है, वह अपनी असली आध्यात्मिक पहचान और भौतिक जगत् में अपने पूर्व-जीवनों को विस्मृत कर देता है, यद्यपि अधिकतर आत्माएँ मानव-रूप में आने से पूर्व ८४,००,००० योनियों में देहान्तरण कर चुकी होती हैं।

यमदूतों ने बताया, ''इस प्रकार जीव एक भौतिक शरीर से दूसरे में—मानव, पशु और देवयोनि में देहान्तरण करता है। जब जीवात्मा देव-शरीर में प्रवेश करता है, वह बहुत प्रसन्न होता है। जब उसे मानव-शरीर मिलता है, वह कभी सुखी और कभी दुःखी होता है। जब वह पशु-शरीर पाता है, वह सदा भयभीत रहता है। किन्तु सभी

दशाओं में, वह जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि का अनुभव करता हुआ भयंकर दुःख भोगता है। उसकी इस दुःखपूर्ण स्थिति को *संसार* कहते हैं, अर्थात् भौतिक शरीरों की विभिन्न योनियों के माध्यम से आत्मा का देहान्तरण।''

यमदूत ने आगे कहा, ''मूर्ख शरीरस्थ बद्धात्मा, अपनी इन्द्रियों और मन को वश में न रख पाने के कारण भौतिक प्रकृति के गुणों के प्रभाव के अनुसार, न चाहते हुए भी कर्म करने को विवश होता है। वह उस रेशम के कीड़े की तरह है, जो अपनी ही लार से जाली बुनता है और तब उसी में फँस जाता है। जीवात्मा अपने ही सकाम कर्मों के जाल में अपने को फँसा लेता है, और तब उसे मुक्त होने के लिए कोई रास्ता नहीं मिलता। इस तरह वह सदैव भ्रमित रहता है और बारम्बार मरता और जन्म लेता है।''

यमदूतों ने कहा, ''अपनी तीव्र भौतिक इच्छाओं के कारण जीवात्मा किसी विशेष परिवार में जन्म लेता है और माता अथवा पिता के अनुरूप शरीर प्राप्त करता है। वह शरीर उसके अतीत और भावी शरीरों का संकेत देता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक वसन्त ऋतु पिछले और आगामी वसन्त ऋतुओं का संकेत देती है।''

जीव का मानव-रूप विशेष तौर से मूल्यवान् होता है, क्योंकि केवल मनुष्य ही उस दिव्य ज्ञान को समझ सकता है, जिसके द्वारा जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हुआ जा सकता है। किन्तु अजामिल ने अपना मानव-जीवन व्यर्थ गँवा दिया था।

यमदूतों ने कहा, ''प्रारम्भ में अजामिल ने सारे वैदिक शास्त्रों का अध्ययन किया। वह सच्चरित्र और सदाचार का आगार था। वह बहुत सुशील और नम्र था, और उसने अपनी इन्द्रियों और मन को वश में कर रखा था। वह सदा सत्य बोलता था, वैदिक श्लोकों का उच्चारण करना जानता था और बहुत पवित्र था। अजामिल सदैव अपने

आध्यात्मिक गुरु, अतिथियों और परिवार के वरिष्ठ सदस्यों के प्रति आदर-भाव रखता था; वास्तव में वह मिथ्या प्रतिष्ठा की भावना से मुक्त था। वह सभी प्राणियों के प्रति दयालु था और कभी किसी से द्वेष नहीं करता था।

"परन्तु एक बार अजामिल अपने पिता की आज्ञानुसार फल-फूल इकट्ठा करने के लिए वन में गया। घर लौटते समय मार्ग में उसे एक अतिकामुक, निम्न कोटि का आदमी मिला, जो निर्लज्जता के साथ एक वेश्या का आलिंगन और चुंबन कर रहा था। वह आदमी मुस्करा और गा रहा था, और इस प्रकार आनन्द मना रहा था, जैसे यही उचित व्यवहार हो। वेश्या और वह आदमी दोनों ही मदमत्त थे। वेश्या की आँखें नशे के कारण घूम रही थीं और उसके वस्त्र ढीले होकर उसके शरीर को आंशिक रूप से नग्न दिखा रहे थे। जब अजामिल ने इस वेश्या को देखा, तो उसके मन की सुप्त काम-वासनाएँ जाग उठीं और भ्रान्ति में वह उनके अधीन हो गया। उसने शास्त्रों की शिक्षाओं को याद करने की चेष्टा की और अपने ज्ञान एवं बुद्धि की सहायता से उसने अपनी काम-वासना को वश में लाने का प्रयास किया। परन्तु हृदय-स्थित कामदेव की शक्ति के कारण, वह अपने मन को रोक न सका। उसके बाद वह सदैव वेश्या का ही चिंतन करता रहता, और थोड़े ही समय में वह उसे नौकरानी के रूप में अपने घर में ले आया।

"तब अजामिल ने अपनी सारी आध्यात्मिक साधनाएँ त्याग दीं। उसने अपने पिता से विरासत के रूप में जो धन प्राप्त किया था, उसे वेश्या को उपहार देने में उड़ा दिया और प्रतिष्ठित ब्राह्मण-परिवार में उत्पन्न अपनी सुन्दर, युवा पत्नी को भी त्याग दिया।

"यह दुष्ट अजामिल वैध अथवा अवैध, सभी तरीकों से धन प्राप्त करने लगा और उस धन से वेश्या के पुत्र-पुत्रियों का पालन करने लगा। मरने से पहले उसने प्रायश्चित्त नहीं किया। अतएव उसके

पापपूर्ण जीवन के कारण हमें उसको यमराज के दरबार में ले जाना जरूरी है। वहाँ अपने पाप-कर्मों के अनुपात से वह दण्डित होगा, और तब उसे भौतिक जगत् में उपयुक्त शरीर में वापस भेजा जाएगा।"

यमदूतों की बातों को सुनकर, भगवान् विष्णु के सेवकों ने, जो सदैव तर्क और युक्तियों को प्रस्तुत करने में निपुण होते हैं, उत्तर दिया, "यह देखना कितना दुःखद है कि जिन पर धार्मिक सिद्धान्तों को पालन कराने का दायित्व है, वे बिना कारण एक निरपराध को दण्डित कर रहे हैं। अजामिल ने पहले ही अपने सारे पाप-कर्मों के लिए प्रायश्चित्त कर लिया है। सच तो यह है कि उसने न केवल इसी जन्म के पापों के लिए, बल्कि अपने लाखों पूर्व-जन्मों में किए गए पापों के लिए भी प्रायश्चित्त कर लिया है, क्योंकि उसने मरते समय, असहाय स्थिति में भगवान् नारायण के नाम का उच्चारण किया है। इसलिए अब वह पवित्र है और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त होने के योग्य है।"

विष्णुदूतों ने बताया, "भगवान् विष्णु के पवित्र नाम का उच्चारण चोर अथवा शराबी के लिए प्रायश्चित्त का सर्वोत्तम उपाय है, उसके लिए भी, जो मित्र अथवा सम्बंधी के साथ विश्वासघात करता है, जो पुरोहित की हत्या करता है, या जो गुरु-पत्नी अथवा अन्य वरिष्ठ व्यक्ति की पत्नी के साथ यौनाचार में लिप्त रहा है। यह उसके लिए भी प्रायश्चित्त का सर्वोत्तम उपाय है, जो स्त्रियों, राजा अथवा अपने पिता का वध करता है, या जो गो-हत्या करता है, और अन्य सभी पापियों के लिए भी। केवल भगवान् विष्णु का पवित्र नाम लेने से ये पापीजन भगवान् का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं और भगवान् सोचते हैं, 'चूँकि इस मनुष्य ने मेरे पवित्र नाम का उच्चारण किया है, इसलिए यह मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं इसकी रक्षा करूँ।'"

कलह और पाखंड से पूर्ण इस वर्तमान युग में पुनर्जन्म से मुक्ति चाहने वाले को इस महान् मुक्ति-मंत्र—'हरे कृष्ण' महामंत्र—का

संकीर्तन करना चाहिए, क्योंकि यह हृदय से उन सभी भौतिक वासनाओं को दूर करके उसे पूर्णतया स्वच्छ कर देता है, जो जन्म-मृत्यु के चक्र में व्यक्ति को फँसाये रखती हैं।

विष्णुदूतों ने कहा, ''जो भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, वह तत्काल अनन्त पाप-कर्मों के फलों से मुक्त हो जाता है, भले ही वह इसे केवल परिहास के लिए अथवा संगीत के मनोविनोद के लिए ही क्यों न करे। शास्त्रों और सभी विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है।

''यदि कोई भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करता है और तभी किसी दुर्घटना में मर जाता है, अथवा किसी जंगली पशु से, या किसी रोग या अस्त्र से मारा जाता है, तो वह पुनर्जन्म लेने की विवशता से तत्काल मुक्त कर दिया जाता है। जिस प्रकार अग्नि सूखी घास को जला कर राख कर देती है, भगवान् श्रीकृष्ण का पवित्र नाम मनुष्य के कर्म-विषयक समस्त फलों को जला कर राख कर देता है।''

विष्णुदूत तब बोले, ''यदि कोई व्यक्ति औषध के प्रभाव को बिना जाने उसे लेता है, अथवा ऐसी औषध लेने को उसे विवश किया जाता है, तो भी वह काम करेगी। यदि कोई व्यक्ति भगवान् के पवित्र नाम-संकीर्तन के मूल्य को नहीं जानता, तब भी उसे पुनर्जन्म से मुक्त करने में वह प्रभावी होगा।

विष्णुदूतों ने बताया, ''मृत्यु के समय, अजामिल ने असहाय स्थिति में और उच्च स्वर से भगवान् श्रीनारायण के पवित्र नाम का उच्चारण किया। इस उच्चारण मात्र से वह पापी जीवन के फलस्वरूप पुनर्जन्म लेने की विवशता से मुक्त हो गया। इसलिए दोबारा भौतिक शरीर के कारागार में उसे दण्ड देने के लिए अपने स्वामी के पास ले जाने की चेष्टा न करो।''

विष्णुदूतों ने तब अजामिल को मृत्यु के देवता के दासों द्वारा बाँधे गये रस्सों से छुड़ा दिया। अजामिल होश में आ गया, और भय से मुक्त होकर, उसने विष्णुदूतों के चरणों में प्रणाम करके उनका सादर अभिवादन किया। परन्तु जब विष्णुदूतों ने देखा कि अजामिल उनसे कुछ कहने का प्रयत्न कर रहा है, तो वे अन्तर्धान हो गये।

अजामिल आश्चर्य में डूब गया, ''क्या यह स्वप्न था जो मैंने देखा? अथवा यह सत्य था? मुझे घसीट कर ले जाने के लिए हाथों में रस्सियाँ लिए भयंकर मनुष्यों को मैंने देखा था। वे कहाँ चले गये? और वे चार तेजस्वी पुरुष कहाँ हैं, जिन्होंने मुझे बचाया?''

अजामिल तब अपने जीवन पर पलट कर विचार करने लगा, ''अपनी ही इन्द्रियों का दास होकर मैं कितना पतित हो गया था! मैं अपनी सन्त-ब्राह्मण की स्थिति से नीचे गिर गया और मैंने एक वेश्या के गर्भ से सन्तान उत्पन्न की और मैंने अपनी पतिव्रता, सुन्दर तरुण पत्नी को त्याग दिया। इससे भी अधिक, मेरे माता-पिता वृद्ध थे, जिनकी देखभाल करने वाला अन्य कोई मित्र अथवा पुत्र न था। मैंने उनकी भी देखभाल नहीं की, अतः उन्होंने बड़ी कठिनाई और दुःख भरा जीवन बिताया। अब यह स्पष्ट है कि मुझ जैसे पापी को अगले जीवन में नारकीय कष्ट भोगने के लिए विवश किया जाना चाहिए था।''

अजामिल ने कहा, ''मैं इतना अभागा हूँ, परन्तु अब मुझे एक और अवसर मिला है, अतः मुझे जन्म-मृत्यु के इस दुश्चक्र से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए।''

अजामिल ने तुरंत ही अपनी वेश्या-पत्नी का त्याग कर दिया, और हरिद्वार की यात्रा की, जो हिमालय पर्वत के क्षेत्र में एक तीर्थ-स्थान है। वहाँ उसने एक विष्णु-मंदिर में शरण ली, जहाँ उसने भक्ति-योग का अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को भक्तिमय सेवा अर्पित करने का अभ्यास किया। जब उसका मन और बुद्धि, श्रीभगवान् के ध्यान में

पूर्णरूप से स्थिर हो गये, अजामिल ने अपने सामने फिर से चार दिव्य पुरुषों को देखा। यह पहचान कर कि ये वही विष्णुदूत हैं, जिन्होंने उसे यमदूतों से बचाया था, उसने उनका झुककर अभिवादन किया।

हरिद्वार में गंगा के तट पर अजामिल ने अपनी अस्थायी, भौतिक देह त्यागी और अपना सनातन, आध्यात्मिक रूप प्राप्त किया। विष्णुदूतों के साथ वह एक स्वर्ण विमान में चढ़ा और अन्तरिक्ष मार्ग से यात्रा करता हुआ सीधा भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ लोक को चला गया और उसने इस भौतिक जगत् में फिर कभी जन्म नहीं लिया।

५

आत्मा की रहस्य-यात्रा

[कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के लेखों से उद्धरण]

एक जीवन समय की एक कौंध मात्र है

अनादि काल से जीवात्मा जीवन की विविध योनियों में और विभिन्न लोकों में, लगभग निरन्तर, यात्रा करता रहा है। भगवद्गीता में इस प्रक्रिया की व्याख्या की गई है : माया के प्रभाव से मोहित होकर प्रत्येक जीवात्मा भौतिक शक्ति द्वारा दिये गये शरीर-रूपी वाहन पर चढ़कर सारे ब्रह्माण्ड में भटक रहा है। भौतिक जीवन में कर्म और उसके फल की एक शृंखला है। यह कर्म और कर्मफलों की एक लंबी फिल्म रील की चर्खी है, और इस कर्म-फल के प्रदर्शन में एक जीवन मात्र क्षणिक कौंध है। जब बालक पैदा होता है, तब यह समझा जाना चाहिए कि उसका विशिष्ट प्रकार का शरीर एक नये कर्म-संग्रह का प्रारम्भ है, और जब कोई वृद्ध मरता है, तो यह समझा जाना चाहिए कि कर्मफलों का एक संग्रह समाप्त हो गया।

—श्रीमद्भागवतम् (३.३१.४४)

तुम्हें अपना अभीष्ट शरीर प्राप्त होता है

जीवात्मा अपने शरीर की सृष्टि अपनी ही इच्छाओं से करता है, और भगवान् की बहिरंगा शक्ति उसे ठीक वही रूप देती है, जिससे वह अपनी इच्छाओं का पूर्ण रूप से भोग कर सके। शेर दूसरे पशु के रक्त का भोग करना चाहता था; अतएव भगवान् की कृपा से भौतिक शक्ति ने उसे शेर का शरीर दिया, जो दूसरे पशु के रक्त को भोगने की सुविधाओं से युक्त था।

—श्रीमद्भागवतम् (२.९.२)

मृत्यु का अर्थ है, अपने पिछले जीवन की विस्मृति

मृत्यु के बाद व्यक्ति अपने वर्तमान शारीरिक सम्बंधों के विषय में सब कुछ भूल जाता है; इसका थोड़ा-सा अनुभव हमें रात में सोने पर होता है। सोने पर हम इस शरीर और इसके सम्बंधों के बारे में सब कुछ भूल जाते हैं, यद्यपि यह भूल जाना कुछ ही घंटों के लिए और अस्थायी होता है। मृत्यु कुछ महीनों तक सोने से अधिक कुछ नहीं है जिससे शारीरिक पिंजरे की एक नयी अवधि विकसित हो सके, जो प्रकृति के विधान द्वारा हमारी आकांक्षाओं के अनुरूप हमें मिलती है। अतएव, वर्तमान शरीर में विद्यमान रहने तक केवल आकांक्षाओं को बदल देना पड़ता है और इसके लिए इसी मनुष्य-जीवन में प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। यह प्रशिक्षण जीवन में किसी भी स्तर पर प्रारम्भ किया जा सकता है, यहाँ तक कि मरने के कुछ ही क्षण पहले भी, परन्तु सामान्य विधि यह है कि मनुष्य प्रारम्भिक जीवन से ही प्रशिक्षण प्राप्त करे।

—श्रीमद्भागवतम् (२.१.१५)

आत्मा पहले मानव-शरीर ग्रहण करता है

मूल रूप से जीव आध्यात्मिक है; परन्तु जब वह इस भौतिक संसार के भोग की इच्छा करता है, तो वह नीचे आ जाता है। हम समझ सकते हैं कि जीवात्मा सर्वप्रथम जिस शरीर को धारण करता है, वह मानव-रूप होता है। परन्तु धीरे-धीरे, अपने नीच कोटि के कर्मों के कारण वह जीवन की निम्न योनियों में गिर जाता है जैसे पशु, वनस्पति, और जलचर। विकास की क्रमिक प्रक्रिया से जीवात्मा फिर से मानव-शरीर को प्राप्त करता है, और उसे देहान्तरण की प्रक्रिया से बच निकलने के लिए एक और अवसर दिया जाता है। यदि वह मानव-रूप में अपनी स्थिति को समझने के लिए प्रदत्त अवसर को फिर खो देता है, तो उसे पुनः जन्म-मृत्यु के चक्र में विविध शरीरों में डाल दिया जाता है।

—श्रीमद्भागवतम् (४.२९.४)

आधुनिक वैज्ञानिक पुनर्जन्म के विज्ञान से अनजान हैं

आधुनिक वैज्ञानिकों को देहान्तरण का यह विज्ञान पूर्णतया अज्ञात है। तथाकथित वैज्ञानिक इन विषयों के बारे में सोचना भी नहीं चाहते, क्योंकि यदि वे इस सूक्ष्म विषय पर और जीवन की समस्याओं पर विचार करेंगे, तो उन्हें अपना भविष्य बहुत अंधकारमय दिखाई पड़ेगा।

—श्रीमद्भागवतम् (४.२८.२१)

पुनर्जन्म का अज्ञान भयावह है

आधुनिक सभ्यता पारिवारिक सुखों, सुविधाओं के उच्चतम मानक पर टिकी है, अतएव सेवा-निवृत्त होने पर प्रत्येक आदमी

अच्छी प्रकार से सजे-सजाये और सुन्दर स्त्रियों और बच्चों से अलंकृत घरों में सुविधाजनक जीवन बिताने की आशा करता है और ऐसे सुखों से परिपूर्ण घर को छोड़ने की इच्छा कभी नहीं करता। सरकार के ऊँचे अधिकारी और मंत्री मृत्युपर्यन्त अपने उच्च पदों से चिपके रहना चाहते हैं और वे पारिवारिक सुखों को त्यागने की बात स्वप्न में भी नहीं सोचते, और न उन्हें छोड़ने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार की भ्रान्तियों में बंधे भौतिकतावादी मानव और भी अधिक सुखमय जीवन के लिए विविध योजनाएँ बनाते रहते हैं, परन्तु अकस्मात् क्रूर मृत्यु निर्दयता से आ जाती है और उस महान् योजनाकार को उसकी इच्छा के विरुद्ध वर्तमान शरीर त्याग करके नया शरीर धारण करने के लिए विवश कर देती है। इस प्रकार जीवन की ८४,००,००० योनियाँ में से अपने कर्म-फल के अनुरूप दूसरे शरीर को स्वीकार करने के लिए ऐसा योजनाकार विवश हो जाता है।

वे लोग जो पारिवारिक सुखों में अत्यन्त आसक्त रहे हैं, पापपूर्ण जीवन की लंबी अवधि में किए अनेक पाप-कर्मों के कारण अगले जन्म में सामान्यतया निम्न योनियों में भेजे जाते हैं, और इस प्रकार मानव-जीवन की सम्पूर्ण शक्ति व्यर्थ जाती है। मानव-रूप के व्यर्थ होने के भय से और मिथ्या वस्तुओं के प्रति आसक्ति से बचने के लिए पहले नहीं तो पचास वर्ष की आयु में ही सही, मृत्यु की चेतावनी को समझ लेना चाहिए। सिद्धान्त तो यह है कि मानव को निश्चित रूप से मान लेना चाहिए कि पचास वर्ष से कम की आयु में भी मृत्यु की चेतावनी तो सतत विद्यमान है। अतएव मनुष्य को अगले बेहतर जीवन हेतु जीवन में किसी भी समय तैयारी कर के रखनी चाहिए।

—श्रीमद्भागवतम् (२.१.१६)

"और तू मिट्टी में लौट जायेगा"

जब हम मरते हैं, तो पाँच तंत्त्वों—भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश—से बना यह शरीर विखंडित हो जाता है, और स्थूल तत्त्व अपने-अपने मूल तत्त्वों को लौट जाते हैं। अथवा, जैसा कि ईसाई-बाइबल कहती है, "तुम मिट्टी हो, और मिट्टी को ही तुम लौट जाओगे।" कुछ समाजों में शरीर को जलाया जाता है, कुछ में दफनाया जाता है और कुछ में इसे पशुओं के लिए फेंक दिया जाता है। भारतवर्ष में हिन्दू लोग शरीर का दाह करते हैं, और इस प्रकार शरीर राख में बदल जाता है। राख मिट्टी का ही दूसरा रूप है। ईसाई शरीर को गाड़ते हैं और थोड़े समय तक कब्र में रहने के बाद शरीर अन्ततः मिट्टी में परिवर्तित हो जाता है, जो राख की ही तरह, मिट्टी का दूसरा रूप है। अन्य समाजों में—जैसे भारत के पारसी समुदाय में—न तो शरीर को जलाते हैं, न दफनाते हैं, बल्कि गिद्धों के लिए फेंक देते हैं, और गिद्ध तत्काल आकर शरीर को खा जाते हैं, और तब शरीर अन्त में मल में बदल जाता है। किसी भी तरह, यह सुन्दर शरीर जिसे हम साबुन से नहलाते हैं, और जिसकी इतनी अच्छी तरह देखभाल करते हैं, अन्ततः मल, राख या मिट्टी में बदल जाएगा। मृत्यु के समय, सूक्ष्म तत्त्व (मन, बुद्धि और अहंकार), आत्मा के सूक्ष्म कण को कर्मानुसार सुख-दुःख भोगने के लिए दूसरे शरीर में ले जाते हैं।

—योगपथ

ज्योतिष-विज्ञान और पुनर्जन्म

जीव पर पड़ने वाले ग्रहों के प्रभावों की खगोलीय गणनाएँ कोई कल्पना नहीं हैं, बल्कि वे वास्तविकता हैं जैसा कि श्रीमद्भागवतम्

पुष्टि करता है। प्रत्येक प्राणी हर क्षण प्रकृति के नियमों से नियंत्रित होता है, जैसेकि हर नागरिक राज्य के प्रभाव से नियंत्रित रहता है। राज्य के नियमों का स्थूल रूप में पालन किया जाता है, परन्तु भौतिक प्रकृति के नियम, हमारी स्थूल बुद्धि के लिए सूक्ष्म होने के कारण, आम तौर पर अनुभव नहीं किए जा सकते।

प्रकृति का विधान इतना सूक्ष्म है कि हमारे शरीर का प्रत्येक अंग, अपने-अपने विशिष्ट नक्षत्रों से प्रभावित होता है, और जीव इस प्रकार ग्रह-प्रभावों की जोड़-तोड़ से अपनी कारागार की अवधि को पूरा करने के लिए अपने कार्यशील शरीर को प्राप्त करता है। अत: मनुष्य का भाग्य जन्म के समय पर नक्षत्रों की स्थिति से निश्चित होता है, और किसी विद्वान् ज्योतिर्विद् द्वारा तथ्यों पर आधारित जन्म-कुंडली बनाई जाती है। यह एक महान् विज्ञान है और किसी विज्ञान का दुरुपयोग उसे व्यर्थ नहीं बना देता।

नक्षत्रों के प्रभावों की यह उपयुक्त व्यवस्था मनुष्य की इच्छा की सृष्टि नहीं हैं, बल्कि भगवान् के उच्चस्तरीय प्रबंध के माध्यम से रची गयी व्यवस्था है। असल में, ऐसा प्रबन्ध जीव के अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार किया जाता है। यही महत्त्व है जीव द्वारा किये गये पुण्य-कर्मों का। केवल पुण्य-कर्मों के द्वारा ही मनुष्य अच्छी सम्पत्ति, अच्छी शिक्षा और सुन्दर रूप प्राप्त करता है।

—श्रीमद्भागवतम् (१.१२.१२)

[सम्पादक की टिप्पणी : इस संकलन में "विद्वान् ज्योतिर्विद्" पद का अर्थ है, वह व्यक्ति जो ज्योतिष के वैदिक विज्ञान में पूर्णतया निष्णात है। इसकी तुलना में आधुनिक लोकप्रिय ज्योतिर्विद्या गलतियों से भरी भावुकता का मूर्खतापूर्ण प्रयास है।]

आपके विचार आपके भावी शरीर का सृजन करते हैं

आकाश में सूक्ष्म रूप विद्यमान हैं, यह तथ्य टेलीविजन के प्रसारण द्वारा आधुनिक विज्ञान सिद्ध कर चुका है, जिसके माध्यम से चित्र आकाश-तत्त्व की क्रिया द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजे जाते हैं। श्रीमद्भागवतम् में महान् वैज्ञानिक शोध के लिए महत्त्वपूर्ण आधार दिया हुआ है, क्योंकि वह इस बात की व्याख्या करती है कि किस प्रकार आकाश से सूक्ष्म रूप उत्पन्न हो जाते हैं, उनके लक्षण और क्रियाएँ क्या हैं और साकार स्थूल तत्त्व अर्थात् वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का निर्माण सूक्ष्म तत्त्व से किस प्रकार प्रकट होते हैं। मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ जैसे विचार, अनुभूति और संकल्प भी आकाश के स्तर पर होने वाली क्रियाएँ हैं। भगवद्गीता के कथन की पुष्टि कि मरने के समय की मन:स्थिति अगले जन्म के लिए आधार होती है, श्रीमद्भागवतम् में भी कई स्थलों पर मिलती है। जैसे ही अवसर मिलता है, मानसिक स्थिति स्थूल रूप ग्रहण कर लेती है।

—श्रीमद्भागवतम् (३.२६.३४)

कुछ लोग पुनर्जन्म क्यों स्वीकार नहीं कर सकते?

मृत्यु के बाद जीवन है और साथ ही यह भी सम्भावना है कि बारम्बार होने वाले जन्म-मृत्यु के चक्र से कोई अपने को मुक्त कर सकता है और अमरता प्राप्त कर सकता है। किन्तु चूँकि अनन्त काल से हम एक शरीर के बाद दूसरे शरीर को स्वीकार करने के अभ्यस्त

हो चुके हैं, अतः हमारे लिए उस जीवन के विषय में सोचना कठिन हो गया है, जो सनातन है। भौतिक जीवन इतना क्लेशप्रद होता है कि यदि कोई यह भी सोच सकता है कि कोई सनातन जीवन है, तो वह जीवन भी क्लेशप्रद ही होगा। उदाहरणार्थ, एक बीमार व्यक्ति जो कड़वी दवाई खा रहा है, और बिस्तर पर पड़ा है और हिलने-डुलने में असमर्थ होने के कारण वहीं खाना-पीना, मल-मूत्र त्याग कर रहा है, वह अपने जीवन को इतना असहनीय अनुभव कर सकता है कि वह सोचे, "मैं आत्महत्या क्यों न कर लूँ?" उसी प्रकार, भौतिक जीवन इतना दुःख-पूर्ण होता है कि निराशा में कभी-कभी अपनी पहचान को ही नकारने और प्रत्येक वस्तु को शून्य बनाने की चेष्टा करता हुआ मनुष्य शून्यता या निर्विशेषवाद के दर्शन को स्वीकार कर लेता है। वस्तुतः शून्य हो जाना सम्भव नहीं है, और न ही इसकी आवश्यकता है। हम अपनी भौतिक स्थिति में क्लेश का अनुभव करते हैं, परन्तु जब हम अपनी इस भौतिक स्थिति से बाहर निकल जाते हैं, तब हम सच्चे जीवन अर्थात् सनातन जीवन को प्राप्त कर सकते हैं।

—महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ

कुछ वर्ष और, बस!

कर्म इस शरीर को सुविधाजनक अथवा असुविधाजनक बनाने के लिए किए गये सकाम-कार्यों का योगायोग है। हमने सचमुच देखा है कि जब एक व्यक्ति मरणासन्न था, उसने अपने चिकित्सक से चार वर्ष और जीवित रहने का एक अवसर देने के लिए प्रार्थना की, जिससे वह अपनी योजनाओं को पूरा कर सके। इसका मतलब यह हुआ कि जब वह मर रहा था, तब वह अपनी योजनाओं के बारे

में सोच रहा था। जब उसका शरीर नष्ट हो गया, तो निस्सन्देह वह अपनी योजनाओं को मन, बुद्धि और अहंकार से निर्मित अपने सूक्ष्म शरीर के माध्यम से अपने साथ ले गया। इस प्रकार हृदय में परमात्मा के रूप में सदैव विद्यमान परम भगवान् की कृपा से उसे दूसरा अवसर मिलेगा। अगले जन्म में, परमात्मा की कृपा से मनुष्य को स्मृति प्राप्त होती है और पूर्व-जीवन में प्रारम्भ की गई योजनाओं को वह पूरा करना शुरू करता है। भौतिक प्रकृति द्वारा दिए गए वाहन पर चढ़कर और हृदय में स्थित परमात्मा द्वारा स्मरण कराये जाने पर, अपनी योजनाओं को पूरा करने के लिये जीव सारे ब्रह्मांड में संघर्ष करता है।

—श्रीमद्भागवतम् (४.२९.६२)

शल्य-चिकित्सा के बिना लिंग-परिवर्तन

मृत्यु के समय जीव जो सोचता है, उसी के अनुरूप वह अगला जन्म पाता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रति अत्यन्त आसक्त होता है, तो मरने के समय वह स्वभावतः अपनी पत्नी के विषय में ही सोचता है, और अगले जन्म में वह स्त्री का शरीर पाता है। उसी प्रकार, यदि कोई स्त्री मृत्यु के समय अपने पति के विषय में सोचती है, तो वह अगले जीवन में पुरुष का शरीर पाती है।

भगवद्गीता में कहा गया है कि सूक्ष्म और स्थूल भौतिक शरीर दोनों ही वस्त्र हैं; वे जीव के लिए कोट और कमीज हैं, इसको हमें सदैव याद रखना चाहिए। जीव का स्त्री अथवा पुरुष होना केवल उसके शारीरिक वस्त्रों के होने जैसा है।

—श्रीमद्भागवतम् (३.३१.४१)

स्वप्न और बीते हुए जीवन

स्वप्नों में हम कभी-कभी ऐसी वस्तुएँ देखते हैं, जिनको हमने अपने वर्तमान शरीर में कभी अनुभव नहीं किया है। कभी-कभी हम स्वप्न में सोचते हैं कि हम आकाश में उड़ रहे हैं, यद्यपि हमें उड़ने का कोई अनुभव नहीं होता है। इसका अर्थ यह है कि किसी पूर्व-जीवन में, या तो देवता के रूप में अथवा अन्तरिक्ष-यात्री के रूप में, हम आकाश में उड़े थे। यह संस्कार मन के संग्रहालय में है और अकस्मात् प्रकट हो जाता है। यह पानी की गहराई में हो रहे उफान (फरमेन्टेशन) के समान है, जो कभी-कभी पानी की सतह पर बुलबुले के रूप में प्रकट हो जाता है। कभी-कभी हम स्वप्न में ऐसे स्थान को पहुँच जाते हैं, जिसका हमने अपने इस जीवन-काल में कभी अनुभव नहीं किया और न ही उसे जाना है, परन्तु यह इस बात का प्रमाण है कि हमने इसका अनुभव किसी बीते हुए जन्म में किया था। यह संस्कार मन में संचित रहता है और कभी विचार के रूप में अथवा कभी स्वप्न में प्रकट हो जाता है। निष्कर्ष यह है कि मन एक भंडारगृह है, जिसमें हमारे अतीत जीवनों के विभिन्न विचार और अनुभव संचित रहते हैं। इस प्रकार एक जीवन से दूसरे जीवन तक, पूर्वजीवनों से इस जीवन तक और इस जीवन से भावी जीवनों तक, निरन्तरता की एक शृंखला बनी रहती है।

—श्रीमद्भागवतम् (४.२९.६४)

अति-मूर्च्छाएँ और अगला जीवन

सांसारिक कार्य-कलाप में अत्यधिक निमग्न जीव अपने भौतिक शरीर के प्रति बहुत आसक्त हो जाता है। मृत्यु के समय भी वह अपने

वर्तमान शरीर और उससे जुड़े हुए सम्बन्धियों की ही बात सोचता है। इस प्रकार वह जीवन की शारीरिक संकल्पना में ही पूरी तरह डूबा रहता है, यहाँ तक कि मृत्यु के क्षण में भी वह अपने शरीर को छोड़ना नहीं चाहता। कभी-कभी यह देखा गया है कि मृत्यु के कगार पर स्थित मनुष्य शरीर छोड़ने से पहले कई दिनों तक अति-मूर्च्छा (coma) में पड़ा रहता है।

कोई आदमी चाहे प्रधान मंत्री अथवा राष्ट्रपति के शरीर का भोग करता हो, परन्तु जब वह समझता है कि उसे कुत्ते अथवा शूकर का देह स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ेगा, तो वह चाहता है कि वर्तमान शरीर को न छोड़े। इसलिए मरने से पहले वह बहुत दिनों तक अति-मूर्च्छा में पड़ा रहता है।

—श्रीमद्भागवतम् (४.२९.७७)

भूत-प्रेत और आत्महत्या

आत्महत्या जैसे जघन्य पाप-कर्मों के कारण भूत-प्रेत भौतिक शरीर के बिना होते हैं। मानव-समाज में प्रेत-जैसे चरित्रों का अन्तिम सहारा आत्महत्या होता है, चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक। भौतिक आत्महत्या से स्थूल शरीर का क्षय होता है, और आध्यात्मिक आत्महत्या से व्यक्ति की अपनी पहचान की क्षति होती है।

—श्रीमद्भागवतम् (३.१४.२४)

शरीरों का बदलना : माया का प्रतिबिम्ब

चन्द्रमा स्थिर होता है और वह एक है, किन्तु जब वह पानी या तेल में प्रतिबिम्बित होता है, तो यह वायु की हलचल के कारण

विभिन्न रूप ग्रहण करता-सा प्रतीत होता है। उसी प्रकार, जीवात्मा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण का सनातन दास है, परन्तु जब वह प्रकृति के भौतिक गुणों में डाल दिया जाता है, तो वह विभिन्न शरीर धारण करता है, कभी देव-शरीर, कभी मनुष्य, कुत्ता, वृक्ष इत्यादि-इत्यादि। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भ्रान्तिजनक शक्ति माया के प्रभाव से जीव अपने आपको यह व्यक्ति या वह व्यक्ति—अमरीकी, भारतीय, बिल्ली, कुत्ता, वृक्ष, या कुछ भी मान बैठता है। इसी का नाम *माया* है। जब आदमी इस भ्रान्ति से मुक्त हो जाता है और समझने लगता है कि आत्मा का भौतिक जगत् के किसी रूप से सम्बंध नहीं है, तब उसकी स्थिति आध्यात्मिक धरातल पर हो जाती है। ज्योंही जीव अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप और अवबोध को प्राप्त करता है, वह तत्काल परम स्वरूप अर्थात् पूर्ण पूरुषोत्तम भगवान् के प्रति समर्पित हो जाता है।

—श्रीमद्भागवतम् (१०.१.४३)

राजनेता अपने देशों में पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं

मृत्यु के समय, प्रत्येक जीव चिन्ता करता है कि उसकी पत्नी और बच्चों का क्या होगा। उसी प्रकार, राजनेता चिन्ता करता है कि उसके देश अथवा उसके राजनीतिक दल का क्या होगा। एक राजनेता अथवा तथाकथित राष्ट्रवादी जो अपनी जन्मभूमि के प्रति अत्यन्त आसक्त होता है, निश्चित रूप से अपना राजनीतिक जीवन समाप्त करने के पश्चात् उसी भूमि में पुनर्जन्म लेगा। इस जीवन में किये गये कर्मों से भी मनुष्य का अगला जन्म प्रभावित होगा। कभी-कभी राजनेता अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए अत्यंत पापपूर्ण कर्म करते हैं। विपक्षी दल के व्यक्ति की हत्या कर देना राजनेता के लिए कोई

असाधारण बात नहीं है। यदि राजनेता को अपने ही तथाकथित देश में जन्म मिलता है, तो भी उसे पूर्व-जन्म में किये गये अपने पाप-कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

—श्रीमद्भागवतम् (४.२८.२१)

पशु हत्या में क्या दोष है?

अहिंसा का अर्थ है, किसी जीव के जीवन की प्रगति में बाधा न पहुँचाना। मनुष्य को यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि आत्मा का स्फुलिंग, शरीर के मारे जाने पर भी कभी नहीं मारा जाता, अत: इन्द्रियतृप्ति के लिए पशुओं को मारने में कोई बुराई नहीं है। अन्न, फल और दूध की पर्याप्त मात्रा होने के बावजूद भी लोग अब पशुओं को खाने के आदी हो चुके हैं। पशुओं को मारने की कोई आवश्यकता नहीं है...पशु भी एक पशु देह से दूसरे में देहान्तरण करके अपने क्रमिक विकास में आगे बढ़ रहे हैं। यदि किसी पशु को मारा जाता है, तो उसकी प्रगति रुक जाती है। यदि कोई पशु किसी शरीर में कुछ दिनों अथवा वर्षों की निर्धारित अवधि के लिए रह रहा है, और यदि उसे समय के पूर्व मार दिया जाता है, तो उसे किसी दूसरी योनि में उन्नति करने के लिए अपने शेष दिनों को पूरा करने तक के लिए फिर से उसी योनि में लौटना पड़ता है। अतएव केवल अपने स्वाद की तृप्ति के लिए उसकी प्रगति को बाधित नहीं करना चाहिए।

—भगवद्गीता यथारूप (१६.१-३)

विकास : योनियों के मार्ग से आत्मा की यात्रा

हम देखते हैं कि योनियाँ बहुत सारी हैं। इन योनियों के विभिन्न

रूपों का उद्‌गम क्या है ? कुत्ते का रूप, बिल्ली का रूप, वृक्ष का रूप, रेंगने वाले जीवों का रूप, कीड़ों के रूप, मछलियों के रूप ?

क्रमिक जैव-विकास सम्भव है, परन्तु फिर भी ये सारी विभिन्न योनियाँ एक साथ विद्यमान रहती हैं। मछली मौजूद है, मानव मौजूद है, शेर मौजूद है, हर जीव मौजूद है।

यह किसी नगर में विभिन्न प्रकार के आवासों की तरह होता है। इनमें से किसी एक में किराया देने के अपने सामर्थ्य के अनुसार आप निवास कर सकते हैं, परन्तु फिर भी सभी प्रकार के आवास एक ही साथ विद्यमान रहते हैं। उसी प्रकार, जीव को अपने कर्मानुसार इन शरीर-रूपों में से एक में रहने की सुविधा दी जाती है। परन्तु क्रमिक-विकास भी होता है। मछली के पश्चात् विकास का अगला चरण होता है, वनस्पति-जीवन। वनस्पति-रूप के पश्चात् जीव कीट-शरीर में प्रवेश कर सकता है। कीट-शरीर के पश्चात् अगला चरण है पक्षी, तब पशु और अन्त में जीवात्मा मानव-रूप प्राप्त कर सकता है। मानव-रूप से यदि वह समुचित योग्यता प्राप्त कर ले, तो वह आगे विकास कर सकता है, अन्यथा उसे फिर विकास के चक्र में प्रवेश करना पड़ता है। इसलिए योनियों में यह मानव-रूप जीव के क्रमिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

—चेतना : विलुप्त कड़ी

माया का भ्रम

माया का भ्रम फेन-जैसा है
जो समुद्र में फिर से मिल जाता है।
न कोई माँ है, न पिता, न सम्बंधी;
समुद्र-फेन की तरह, वे क्षणभंगुर हैं;
और, जैसे समुद्र-फेन समुद्र में मिल जाता है,
पाँच तत्त्वों से बना यह मूल्यवान् शरीर
अदृश्य हो जाता है।
कौन बता सकता है कि कितने क्षणभंगुर रूप
इसी देहबद्ध आत्मा ने ग्रहण किये हैं ?

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद्
ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद की
एक बंगाली कविता

६

पुनर्जन्म का तर्क-विज्ञान

"क्या कभी यह बात आपके मन में आई है कि संसार में दुष्टता क्यों है, इसका विवेचन देहान्तरण कराता है और साथ-साथ उसे सही भी ठहराता है? जिन दुःखों को हम भोगते हैं, यदि वे पूर्व जन्मों में किये गये पापों का परिणाम हैं, तो हम उन्हें समर्पण भाव से और इस आशा के साथ सहन कर सकते हैं कि यदि हम इस जीवन में पुण्य के लिए प्रयास करें, तो हमारे भावी जीवन कम कष्टमय होंगे।"

—विलियम सोमरसेट मॉम
(दि रेज़र्स ऐज)

एक ही दिन एक ही समय में दो बालक जन्म लेते हैं। पहले के माता-पिता सम्पन्न और सुशिक्षित होते हैं और उन्होंने वर्षों तक अपनी पहली सन्तान के आगमन के लिए उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा की है। उनकी सन्तान एक लड़का है, जो बुद्धिमान्, स्वस्थ और मनोहर है, जिसका भविष्य अनेक सम्भावनाओं से पूर्ण है। निश्चित ही भाग्य उस पर प्रसन्न है।

दूसरा बालक पूर्णतया भिन्न जगत् में प्रवेश करता है। वह ऐसी माता से पैदा होता है जिसे गर्भधारण की अवधि में ही त्याग दिया गया था। गरीबी में अपने बीमार नवजात बालक के पालन के लिए उसे किसी उत्साह का अनुभव नहीं होता। आगे का जीवन कठिनाइयों और तकलीफों से परिपूर्ण है, और इनसे उपर उठना आसान नहीं होगा।

संसार इस प्रकार की विषमताओं से भरा पड़ा है। ऐसी उग्र असमानताएँ जिनसे बहुधा ऐसे प्रश्न उठ खड़े होते हैं, "विधाता इस प्रकार अन्याय कैसे कर सकता है? जॉर्ज और मेरी ने क्या किया था जिससे उनका पुत्र अंधा पैदा हुआ? ये तो भले लोग हैं। भगवान् कितना निर्दयी है!"

तथापि, सनातन अस्तित्व के दृष्टिकोण से पुनर्जन्म के सिद्धान्त जीवन के विषय में विचार करने के लिए अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य से देखने का अवसर देते हैं। इस दृष्टिकोण से, एक संक्षिप्त जीवन की अवधि हमारे अस्तित्व का प्रारम्भ नहीं समझी जाती, बल्कि वह काल में एक कौंध से अधिक कुछ नहीं है; और हम समझ सकते हैं कि बाह्यरूप से देखने पर एक पुण्यात्मा जीव, जो बहुत कष्ट सह रहा है, इसी जीवन अथवा पूर्व-जीवनों में किये गये पापकर्मों का फल भोग रहा है। सार्वभौमिक न्याय की इस बृहत् दृष्टि से हम देख सकते हैं कि प्रत्येक जीव किस प्रकार अपने-अपने कर्मों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी होता है।

हमारे कर्मों की तुलना बीजों से की जाती है। प्रारम्भ में इन कर्मों को संपन्न किया जाता है अथवा बोया जाता है, समय आने पर वे धीरे धीरे फलीभूत होते हैं, और उनकी परिणामी प्रतिक्रिया प्रकट होने लगती है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ जीव के लिए सुखद अथवा दुःखद हो सकती हैं, और इसके प्रत्युत्तर में वह या तो अपने आचरण को सुधार सकता है, अथवा अधिकाधिक पशुवत् व्यवहार कर सकता

है। दोनों ही दशाओं में, पुनर्जन्म के विधान प्रत्येक प्राणी को निष्पक्ष रूप से पूर्व-कर्मों द्वारा अर्जित भाग्य के अनुरूप फल देते हैं।

अपराधी कानून को जानबूझकर भंग करके कारागार में जाने का चुनाव करता है, परन्तु दूसरा आदमी अपनी सेवा की उत्तमता के प्रभाव से उच्चतम न्यायालय में नियुक्त किया जा सकता है। उसी प्रकार जीव अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करता है; वह अपने विशिष्ट शरीर-रूप को अपने लिए स्वयं चुनता है, जो उसके वर्तमान एवं अतीत कर्मों व इच्छाओं पर आधारित होता है। कोई भी व्यक्ति ईमानदारी से यह नहीं कह सकता, "मैंने जन्म लेने के लिए माँग कभी नहीं की थी!" इस भौतिक जगत् की बारम्बार घटने वाली जन्म-मरण की योजना में, "मनुष्य प्रस्ताव रखता है, और ईश्वर उसका फैसला करते हैं।"

जिस प्रकार व्यक्ति अपनी क्रय-शक्ति और कार चलाने की व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर किसी गाड़ी का चुनाव करता है, उसी प्रकार हमारी इच्छाओं और कर्मों के अनुसार हम स्वयं निश्चित करते हैं कि भौतिक प्रकृति हमारे लिए किस प्रकार के अगले शरीर की व्यवस्था करेगी। यदि कोई मनुष्य इस मूल्यवान् जीवन को, जिसका लक्ष्य केवल आत्म-साक्षात्कार है, उसे भोजन-शयन-मैथुन और शरीर-रक्षा जैसे पशु-कर्मों में लगा कर व्यर्थ गँवा देता है, तो ईश्वर उसे ऐसी योनि में जन्म देते हैं जिसमें ऐसे इन्द्रिय-सुखों के लिए और अधिक सुविधा रहती है, किन्तु जिसमें मानव-रूप में अनुभूत किये जाने वाले उत्तरदायित्व तथा अन्य विचलित करने वाली रुकावटें नहीं होतीं।

उदाहरणार्थ, एक पेटू आदमी को, जो तरह-तरह के ढेर सारे भोजन अनाप-सनाप खाता रहता है, प्रकृति के द्वारा सूअर या बकरी का शरीर दिया जा सकता है, एक ऐसा रूप जिससे वह बिना विवेक के मल और गन्दगी को मजे से खा सके।

पुरस्कार और दण्ड का यह उदार विधान पहले अनुचित लग सकता है, परन्तु यह पूर्ण रूप से न्याय-संगत है और भगवान् की परम कारुणिक परिकल्पना से मेल खाता है। मनुष्य को अपने चुनाव के अनुसार इन्द्रिय-सुख भोगने के लिए उपयुक्त शरीर चाहिए। जीव जिस प्रकार का शरीर चाहता है, प्रकृति उसे वही शरीर देकर उसकी इच्छाओं की उचित पूर्ति करती है।

एक अन्य सामान्य भ्रामक धारणा जो पुनर्जन्म के स्पष्ट तर्क द्वारा निरस्त हो जाती है, उस धार्मिक मतवाद से जुड़ी है जिसके अनुसार केवल इसी एक जीवन-काल में किये गये कर्म पर सब कुछ निर्भर माना जाता है, और जो सचेत करता है कि यदि हमने अनैतिक अथवा पाप का जीवन जिया, तो हमें नरक के अन्धतम लोक में सदैव के लिये दण्डित किया जायेगा, जहाँ छुटकारे के लिए प्रार्थना भी सम्भव नहीं होगी। ठीक ही है कि संवेदनशील और ईशभावना से युक्त मनुष्य इस चरम न्याय की व्यवस्था को दैवी कम बल्कि आसुरी अधिक पाते हैं। क्या यह सम्भव है कि मनुष्य तो दूसरों के प्रति दया अथवा करुणा दिखाए, परन्तु ईश्वर में ऐसी भावनाओं का अभाव हो? ऐसे मत ईश्वर को हृदयहीन पिता के रूप में चित्रित करते हैं, जो अपने बालकों को पहले तो कुमार्ग पर जाने दे और बाद में उन्हें अन्तहीन दण्ड और उत्पीड़न भोगते देखे।

इस प्रकार के विवेकहीन उपदेश भगवान् और उनके अपने घनिष्ठ विस्तारों अर्थात् जीवों के बीच प्रेम के सनातन सम्बंधों की अनदेखी करते हैं। परिभाषा के अनुसार, मनुष्य को ईश्वर की प्रतिकृति के अनुरूप बनाया गया है, अतः भगवान् में सब गुण पूर्णता की उच्चतम मात्रा में होने चाहिए। इनमें से एक गुण है दया। यह विचार कि एक संक्षिप्त जीवन के पश्चात् मनुष्य पर नरक की अन्तहीन यातना थोपी जाए, परमेश्वर के अनन्त दयामय होने की कल्पना से मेल नहीं खाता।

एक सामान्य पिता भी अपने पुत्र को अपने जीवन को पूर्ण बनाने के लिए एक से अधिक अवसर प्रदान करेगा।

वैदिक ग्रन्थ बारम्बार भगवान् के महान् कारुणिक स्वभाव की प्रशंसा करते हैं। श्रीकृष्ण तो उन पर भी कृपा करते हैं, जो उनसे खुलकर घृणा करते हैं, क्योंकि वे सभी के हृदय में निवास करते हैं और सभी प्राणियों को अपने-अपने स्वप्नों और अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अवसर देते हैं। वास्तव में, भगवान् की करुणा का कोई अन्त नहीं। श्रीकृष्ण तो असीम कृपालु हैं और उनकी कृपा अकारण (अहैतुकी) भी है। हम अपने पाप-कर्मों के कारण इसके पात्र न भी हों, परन्तु भगवान् प्रत्येक प्राणी से इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे उन्हें जन्म-मृत्यु के चक्र से पार निकल जाने के लिए बारम्बार अवसर देते हैं।

कुन्ती देवी, जो श्रीकृष्ण की परम भक्त थीं, भगवान् से कहती हैं, "आप परम नियन्ता हैं, जिनका न आदि है और न अन्त, और अपनी अहैतुकी कृपा को बाँटने में आप सभी के लिए समान हैं।" (श्रीमद्भागवतम् १.८.२८) तथापि, यदि कोई व्यक्ति सदा के लिए भगवान् से दूर रहता है, तो यह भगवान् के द्वेष करने के कारण नहीं, बल्कि व्यक्ति की ही अपनी बारम्बार पसंद के कारण होता है। सर विलियम जोन्स ने, जिसने यूरोप में भारतीय दर्शन का परिचय कराने में सहायता दी, लगभग दो शताब्दी पहले लिखा था, "मैं हिन्दू नहीं हूँ, परन्तु मैं हिन्दुओं के भावी अवस्था (पुनर्जन्म) सम्बंधी मतों को मानता हूँ, जो अपेक्षाकृत अधिक विवेकपूर्ण, अधिक पवित्र हैं और ईसाइयों के उन अन्तहीन दण्ड की शिक्षा देने वाले भयावह मतों की अपेक्षा बेहतर हैं, जो मनुष्य को पापों से निवृत्त करने के लिए अधिक सक्षम हो सकते हैं।"

पुनर्जन्म के मत के अनुसार, भगवान् दुष्ट व्यक्ति द्वारा किये गये

थोड़े-से पुण्य को भी पहचानते हैं और उसको संरक्षित रख देते हैं। कोई शत-प्रतिशत पापी हो, ऐसा व्यक्ति विरले ही देखने में आता है। इसलिए यदि कोई जीव अपने वर्तमान जीवन में थोड़ी सी भी आध्यात्मिक प्रगति करता है, तो अगले जीवन में उसे उस बिन्दु से आगे बढ़ने का अवसर दिया जाता है। भगवान् अपने शिष्य अर्जुन से भगवद्गीता में कहते हैं, "इस प्रयास (कृष्णभावनामृत) में न तो कोई हानि होती है, और न कोई कमी आती है, बल्कि इस मार्ग में थोड़ी-सी प्रगति भी महान् भय (अगले जीवन में मानव से निम्न रूप में लौटने का भय) से बचा सकती है।" आत्मा इस प्रकार अनेक जन्मों में आभ्यन्तरिक आध्यात्मिक गुणों का विकास उस समय तक कर सकता है, जब उसे भौतिक शरीर में जन्म लेने की आवश्यकता ही न रहे और वह आध्यात्मिक लोक में अपने मूल निवास को न लौट जाये।

मानव-जीवन का यह विशिष्ट वरदान है—यद्यपि अपने इस जीवन में और पूर्व जन्म-जन्मान्तरों में किये गये पाप-कर्मों के लिए व्यक्ति भयंकर कष्ट उठाने के लिए बाध्य भी हो तथापि यदि वह कृष्णभावनामृत की प्रक्रिया को स्वीकार कर ले तो वह अपने कर्म को बदल सकता है। मानव-शरीर में आत्मा विकास-क्रम के मध्य-बिन्दु पर खड़ा है। यहाँ से वह चाहे तो अधोगति का अथवा पुनर्जन्म से छुटकारे में से किसी एक का चयन कर सकता है।

७

लगभग पुनर्जन्म

जीवात्मा जिसे अपने अतीत के सकाम कर्मों के फलस्वरूप वर्तमान शरीर प्राप्त हुआ है, इस जीवन के कर्मों के फलों को भले ही समाप्त कर ले, किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह भौतिक शरीरों के बंधन से मुक्त हो गया है। जीवात्मा एक विशिष्ट प्रकार का शरीर प्राप्त करता है, और अपने इस शरीर से किए गए कर्मों द्वारा वह दूसरे शरीर का सृजन करता है। इस प्रकार वह एक शरीर से दूसरे में अपने स्थूल अज्ञान के कारण जन्म और मृत्यु के द्वारा बारम्बार देहान्तरण करता रहता है।

—श्रीमद्भागवतम् (७.७.४७)

सनसनी पैदा करने वाली अमरीकी साप्ताहिक पत्रिकाएँ पुनर्जन्म के सम्बंध में अवैज्ञानिक धारणाओं से भरी रहती हैं, और ''चौंकाने वाले नये साक्ष्य'' को लगभग प्रत्येक सप्ताह प्रस्तुत करती हैं। बीते हुए जीवनों के विषय में ''वास्तविक सच्चाई'' बताने का दावा करने वाली अधिकाधिक पत्रावरणबद्ध पुस्तकों की बाजार में भरमार रहती है। परन्तु किस पर विश्वास किया जाये? और क्या विश्वास करें? क्या ''नेशनल इन्क्वायरर'' और इसी प्रकार के अन्य प्रकाशनों को वास्तव में पुनर्जन्म-विज्ञान के बारे में प्रामाणिक माना जा सकता है?

शरीर-बाह्य अनुभव पुनर्जन्म की अवधारणा को छूता हुआ एक ऐसा पक्ष है, जिसका विस्तृत रूप से प्रचार हुआ है। शरीर-बाह्य अनुभव के

इन विवरणों में से बहुत से तो सत्य हो सकते हैं, पर इनसे वस्तुतः हमें कोई नई जानकारी नहीं मिलती। इस प्रकार की घटनाओं के विवरण पाठकों में यह विश्वास पैदा कर सकते हैं कि अवश्य ही इस शरीर से परे भी एक और वास्तविकता—चेतना या आत्मा—विद्यमान है। परन्तु यह नई सूचना तो नहीं है, क्योंकि यह जानकारी वर्षों से उपलब्ध रही है। वेद बताते हैं कि चेतना आत्मा का एक लक्षण है, और इसलिए वह शरीर के अस्तित्व से पृथक् है। पाँच सहस्र वर्षों से भी पुरानी भगवद्गीता तथा अन्य वैदिक साहित्य को सरसरी तौर पर देखने से भी शरीर से पृथक् आत्मा का अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है। वेद-विज्ञान के विद्यार्थी को यह सुनकर आश्चर्य नहीं होता कि आत्मा, जो (मन, बुद्धि और मिथ्या अहंकार से निर्मित) सूक्ष्म शरीर द्वारा संवाहित होता है, स्वप्नों अथवा आसन्न-मृत्यु के अनुभवों में अस्थायी तौर से अपने भौतिक आवास को छोड़ सकता है। मिथ्या अहंकार से तात्पर्य है, शरीर को स्वयं मान बैठना। ''मैं हूँ'' यह बोध अहंकार है, परन्तु जब आत्मा भौतिक तत्त्वों से दूषित अथवा बद्ध हो जाता है, वह शरीर के साथ तदाकार करता है और सोचता है कि वह भौतिक प्रकृति से उत्पन्न है। जब 'स्व' का बोध सत्य अथवा आत्मा पर लागू किया जाता है, तो वह वास्तविक अहंकार होता है।

पुनर्जन्म : वास्तविक शरीर-बाह्य अनुभव

शरीर-बाह्य अनुभव, सचमुच कोई नई बात नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को ये अनुभव हो चुके हैं, क्योंकि स्वप्न शरीर-बाह्य अनुभवों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। निद्रा के दौरान हम स्वप्नावस्था में प्रवेश करते हैं और (मन, बुद्धि और अहंकार से बना हुआ) हमारा सूक्ष्म शरीर रूप को छोड़ देता है और सूक्ष्म धरातल पर एक भिन्न वास्तविकता का भोग करता है। सूक्ष्म शरीर एक ऐसा वाहन है, जो आत्मा को मृत्यु के समय शरीर के बाहर एक अन्य नये शरीर में ले जाता है।

शरीर-बाह्य अनुभव का एक सामान्य प्रकार आसन्न-मृत्यु के विवरणों में मिलता है, जब लोग बताते हैं कि किस प्रकार वे दुर्घटना स्थल पर, अथवा शल्य-क्रिया की मेज पर, अपने शरीरों के ऊपर मंडराते हुए अपने शरीरों को बिना किसी भौतिक दु:ख, दर्द अथवा असुविधा को महसूस किये देख रहे थे, यद्यपि चिकित्सा की दृष्टि से उनमें से अनेक व्यक्तियों को मृत घोषित कर दिया गया था।

स्थूल शरीर के निष्क्रिय हो जाने पर भी सूक्ष्म शरीर सक्रिय रहता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, स्थूल शरीर के शय्या पर निद्रामग्न पड़े रहने पर भी हमारा सूक्ष्म शरीर कभी कभी हमें स्वप्नों में ले जाता है। जब हम दिन के समय मानसिक यात्राओं पर जाते हैं, जैसे कि दिन के स्वप्न में होता है, उस समय भी पूर्व वर्णित घटना के समान ही एक घटना घटती है।

विशेष परिस्थितियों में जब मृत्यु से अत्यन्त निकटता के साथ हमारा सामना होता है, तब लोग शोधकर्ताओं द्वारा 'आसन्न मृत्यु अनुभव' के नाम से पुकारे जाने वाली स्थिति में पहुँच जाते हैं। कुछ स्थितियों में आसन्न मृत्यु तथा शरीरबाह्य अनुभव संज्ञाओं का अदल-बदल कर के उपयोग किया जा सकता है। आसन्न मृत्यु की स्थिति में सूक्ष्म शरीर सामान्य रूप से स्थूल शरीर के ऊपर मंडराता रहता है। चूँकि आत्मा जीवन का आधारभूत तत्त्व है अर्थात् जीवन का सार है, अत: वह अपने शरीर का निरीक्षण कर सकता है। वह देख, सुन तथा सूँघ सकता है जैसा कि स्थूल शरीर के पास सभी इन्द्रियाँ होने पर वह करता है।

जब आसन्न मृत्यु के बाह्य अनुभवों में सूक्ष्म शरीर अपने स्थूल रूप के ऊपर मंडराता है, तो शरीर की तुलना उस कार से की जा सकती है, जिसका इंजन चलता छोड़ दिया गया हो और उसका चालक क्षण भर के लिए बाहर चला गया हो, परन्तु यदि वह लौटता नहीं तो अन्तत: कार का ईंधन समाप्त हो जाता है और इंजन का

चलना बंद हो जाता है। उसी प्रकार, यदि आसन्न मृत्यु की स्थिति का अनुभव करता हुआ आत्मा शरीर में नहीं लौटता, तो वह व्यक्ति मर जाता है और सूक्ष्म शरीर आत्मा को एक नए जीवन को प्रारम्भ करने के लिए किसी दूसरे भौतिक शरीर में ले जाता है।

यह तथ्य एक ऐसा मूलभूत सिद्धान्त है, जो सम्पूर्ण वैदिक ग्रन्थों में वर्णित है। भगवद्गीता के एक सुविख्यात तथा प्राय: उद्धृत किए जाने वाले श्लोकों में से एक श्लोक के अनुसार :

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस प्रकार शरीरधारी आत्मा इस शरीर में बालपन से यौवन की ओर, और यौवन से बुढ़ापे की ओर निरन्तर गमन करता रहता है, उसी प्रकार आत्मा मृत्यु के समय दूसरे शरीर में देहान्तरण करता है। धीर व्यक्ति इस प्रकार के परिवर्तन से भ्रमित नहीं होता।" (भगवद्गीता २.१३)

अपने वर्तमान जीवनकाल में हम अनजाने ही अपने अगले स्थूल शरीर के लिए सूक्ष्म शरीर का निर्माण कर रहे हैं। जिस प्रकार एक भुई-कीड़ा (cater pillar) पुराने पत्ते को छोड़ने के पूर्व नये पत्ते को पकड़ लेने के पश्चात् आगे बढ़ता है, उसी प्रकार जीव अपने वर्तमान शरीर को छोड़ने के पूर्व नये शरीर का निर्माण करना आरंभ कर लेता है। वास्तविक मृत्यु के समय आत्मा नये शरीर में देहान्तरण करके पुराने शरीर को निर्जीव छोड़ देता है। आत्मा को अस्तित्व बनाए रखने के लिए शरीर की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु आत्मा की उपस्थिति के बिना शरीर एक शव से अधिक कुछ नहीं है। आत्मा के एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित होने को पुनर्जन्म कहा जाता है।

यद्यपि मन तथा आत्मा के शरीर से पृथक् अस्तित्व के बारे में शरीर-बाह्य अनुभवों के अनेकों प्रलेखित साक्ष्य मिल जाते हैं, तथापि वे हमें मृत्यु के समय आत्मा के अन्तिम गन्तव्य का निश्चित पता नहीं देते।

इसलिए, जबकि आसन्न-मृत्यु अनुभवों पर उपलब्ध साहित्य हमें पुनर्जन्म को स्वीकार करने के लिए आधार तो दे सकता है, किन्तु फिर भी वह हमें मृत्यु के अनुभव के पश्चात् पुनर्जन्म के वास्तविक स्वरूप और आत्मा की नियति के विषय में पूर्णतया अज्ञान की स्थिति में छोड़ देता है।

पुनर्जन्म के विषय में सम्मोहन से उत्पन्न प्रत्यावर्तन हमें पूर्ण ज्ञान नहीं देते हैं

पुनर्जन्म पर अनेक लोकप्रिय पुस्तकें सम्मोहन द्वारा उत्पन्न प्रत्यावर्तन के मामलों पर ध्यान केंद्रित करती हैं, जिनमें व्यक्ति अपने पूर्व जन्म अथवा अन्य पिछले जन्मों के विवरणों का स्मरण करते बताये जाते हैं। ऐसी ही एक पुस्तक, *द सर्च फॉर ब्राइडी मर्फी* बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक में सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तक हो गयी थी। इसका पचास से भी अधिक समाचार पत्रों में क्रमशः धारावाहिक प्रकाशन हुआ, और इसने विश्वव्यापी सनसनी सी पैदा कर दी। यह पुस्तक पूर्व-जन्म की ओर प्रत्यावर्तन सम्बंधी सभी पत्रावरणबद्ध पुस्तकों के लिए आने वाले दशकों में आधाररूप बनी; इन पुस्तकों को आज भी कुछ न कुछ लोकप्रियता प्राप्त है। परन्तु पुनर्जन्म सम्बंधी ये पुस्तकें केवल ऊपरी ज्ञान देती हुई एक विस्तृत विषय पर हल्की-सी दृष्टि डालती हैं, जो अनेक कारणों से भ्रामक हो सकती हैं।

दि सर्च फार ब्राईडी मर्फी में लेखक ने, जो एक कुशल सम्मोहनवेत्ता है, एक अधेड़ आयु की अमरीकी महिला श्रीमती वर्जिनिया टिघे को उसके अन्तिम पूर्व-जन्म में ले जाता है, जिसमें उसने दावा किया कि वह आयरलैंड में सन् १७९८ में जन्मी ब्राईडी मर्फी नामक एक लड़की थी, वह आजीवन वहीं रही, और ६६ वर्ष की आयु में बेलफास्ट में उसकी मृत्यु हुई।

सम्मोहन के प्रभाव में, श्रीमती टिघे ने "ब्राईडी" के बाल्य-काल

के घर का विवरण दिया, अपने माता-पिता, मित्रों और सम्बन्धियों के नाम बताये, और अपने "बीते हुए जीवन" के बहुत-से अन्य विवरण प्रस्तुत किये। पुस्तक में यह भी बताया गया है कि मृत्यु के पश्चात् ब्राईडी ने 'आध्यात्मिक लोक' में प्रवेश किया, तत्पश्चात् वर्जिनिया टिघे के रूप में १९२३ में अमरीका में पुनर्जन्म लिया।

श्रीमती टिघे ने ब्राईडी मर्फी के बारे में जो जानकारी दी, उसमें से कुछ को शोधकर्ता प्रमाणित कर सके, किन्तु उन्हें यह भी जानने को मिला कि श्रीमती टिघे का बचपन तथा सम्मोहन के प्रभाव में ब्राईडी मर्फी के बचपन के बारे में उसने जो बताया था, उसमें समानताएँ पाई गयी। उदाहरण के तौर पर, शोध से पता चला कि श्रीमती टिघे चार साल की उम्र में अपनी मौसी के साथ रहती थी और उनके घर के सामने ब्राईडी मर्फी नामकी एक स्त्री रहती थी। परिणाम-स्वरूप ब्राईडी मर्फी की कहानी आज तक वाद-विवाद के चक्र में और बहस में फँसी हुई है।

इससे और इसके समान दूसरी अनेक घटनाओं से हम समझ सकते हैं कि "पूर्वजीवन" की स्मृति के बहुत से विस्तृत निरूपण उस व्यक्ति के बचपन की घटनाओं में से लिए हुए हो सकते हैं। ऐसी घटनाओं का अध्ययन करने वाले मनोचिकित्सकों ने योजनापूर्वक सम्मोहन की ऐसी अवस्था प्रेरित की हुई होती है, जिसमें व्यक्ति अपने पूर्वजीवनों का तर्कयुक्त, लेकिन पूर्णरूप से काल्पनिक निरूपण करता है। कहने का अर्थ यह नहीं है कि सम्मोहन के द्वारा प्रेरित किये गये पूर्वजीवन के सभी किस्से मनगढ़ंत हैं, लेकिन वास्तविक स्मृतियों को सुप्त मन में उपस्थित कल्पनाओं से अलग करने के कार्य में अत्यधिक प्रयास की आवश्यकता रहती है, एवं ऐसा कर पाना प्रायः सम्भव नहीं होता।

सम्मोहन के प्रभाव में गलती से न केवल बचपन की स्मृतियों को पूर्वजीवनों की घटनाओं के रूप में लिया जा सकता है, अपितु किसी भी विचार को गलती से पूर्वजन्म की सच्ची घटनाओं के रूप में देखा

जा सकता है, जैसे कि—बचपन में सुनी हुई कहानियों की याद, भूतकाल में पढ़ी हुई पुस्तकें या कोई भी पूर्णतया काल्पनिक घटनाएँ या स्थितियाँ। अतः पूर्वजन्म को खोजने की सम्मोहनात्मक परागति की विधि अनिश्चित आधार पर कार्य करती है।

पूर्व-जन्म में प्रत्यावर्तन की इस विधि में एक अन्य सामान्य त्रुटि है—वर्तमान जीवन और पिछले पुनर्जन्म के बीच के अन्तराल का कोई स्पष्टीकरण न दे पाना। उदाहरण के लिए, उस स्त्री ने, जो सोचती थी कि वह ब्राईडी मर्फी है, दावा किया था कि उसने अपने पिछले जीवन में १८६४ में देह त्याग किया था। परन्तु उसके वर्जिनिया टिघे के रूप में अगला जन्म लेने और देह त्याग करने के बीच में साठ वर्ष का अन्तराल था। पुस्तक बताती है कि इस अन्तराल में ब्राईडी मर्फी की आत्मा "आध्यात्मिक लोक" में रही।

वेदों में विवेचित पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार, हम जानते हैं कि ऐसा बिल्कुल असम्भव है। पुनर्जन्म की वास्तविक प्रक्रिया यह है कि आत्मा मृत्यु के समय भौतिक शरीर छोड़ने के बाद इस ब्रह्मांड अथवा किसी दूसरे ब्रह्मांड में जीवन की किसी योनि के गर्भ में प्रवेश कर जाता है, जो कर्म के अटल नियमों द्वारा निर्धारित तथा प्रकृति द्वारा व्यवस्था से निर्देशित होता है। मृत्यु के पश्चात् देह-रहित आत्मा, भौतिक शरीर के द्वारा प्रस्तुत किसी बाधा के बिना मनोगति से यात्रा कर सकता है। अतएव एक शरीर के छोड़ने और दूसरे शरीर के ग्रहण करने के बीच नगण्य समय लगता है। केवल पूर्णरूपेण स्वरूप-सिद्ध आत्माएँ ही आध्यात्मिक लोक प्राप्त कर सकते हैं जो पुनर्जन्म-चक्र से परे है। भौतिक जीवन से पूर्णतया बद्ध साधारण जीवात्मा के लिए यह सम्भव नहीं है। तथापि, हर एक आत्मा के लिए आध्यात्मिक जगत् में जाने की सम्भावना है। इसके लिए कुछ आध्यात्मिक साधना का अभ्यास करना आवश्यक है, जिससे यह सम्भव बनता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में (४.९) व्याख्या की है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन, जो मेरे आविर्भाव तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह इस शरीर को छोड़ने पर इस संसार में पुनः जन्म नहीं लेता, अपितु मेरे सनातन धाम को प्राप्त होता है।" परन्तु भगवान् आगे कहते हैं कि "केवल वे महात्मा हीं, जो 'भक्ति' में 'योगी' हैं, दुःखों से भरे इस क्षणभंगुर संसार में लौट कर नहीं आते, क्योंकि उन्होंने सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त कर ली होती है।" (भगवद्गीता ८.१५)

कर्म और पुनर्जन्म के नियम इतनी निपुणता से व्यवस्थित हैं कि जब प्रत्येक भौतिक शरीर मरता है, तो प्रकृति ने पहले से ही व्यवस्था की होती है कि दिवंगत आत्मा, शत-प्रतिशत अपने संचित कर्मों के अनुरूप, दूसरे उपयुक्त भौतिक शरीर में प्रवेश कर सके और नया जन्म ले सके।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

"जिस-जिस भाव को स्मरण करते हुए व्यक्ति अपना शरीर छोड़ता है, उसी स्थिति को निश्चित रूप से वह प्राप्त करेगा।" (भगवद्गीता ८.६) स्वरूप-सिद्ध जीवात्मा सनातन आध्यात्मिक लोक में प्रवेश करने के पश्चात, निश्चित ही, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के इस अस्थायी भौतिक जगत् में पुनः प्रवेश करने की कोई अनिवार्यता नहीं होगी या उसे इच्छा नहीं रहेगी।

पुनर्जन्म विषयक अतीत जीवन की ओर प्रत्यावर्तन की विधि ने कभी-कभी ऐसे तथ्य का साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि एक ही आत्मा अलग-अलग समयों में अलग-अलग शरीरों में निवास कर सकता है, और यह जानकारी सहायक हो सकती है। कई प्रकाशित मामलों में सम्मोहित व्यक्तियों द्वारा पिछले जन्म के बारे में दी गयी जानकारी

आश्चर्यजनक रूप से सही निकली है। ऐसे सम्मोहित प्रत्यावर्तन कभी कभी इतनी उत्कट भावनाएँ प्रकट करते हैं कि जिन पर अविश्वास जताना कठिन होता है। अमरीका के इयन स्टीवीन्सन तथा आस्ट्रेलियाई पीटर रामस्टर के पुर्नजन्म के विषय में किये गये प्रयोगों को उचित प्रकार से लिपिबद्ध किया गया तथा उनमें से बहुत से मामलों में स्वतंत्र पर्यवेक्षक उपस्थित थे जो उनकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं। उनके परीक्षणों में ध्यान देने वाली यह बात है कि उनके द्वारा सम्मोहित कई व्यक्तियों ने उस भाषा में धारा-प्रवाह रूप से बात की जिससे उनको अपने जीवन में थोड़ा सा भी या बिल्कुल ही वास्ता नहीं था, जिसकी पुष्टि की जा चुकी है। कुछ ने ऐसी भाषा में बातें की जो अभी प्रचलन में नहीं है, परन्तु पुरातन रिकार्ड द्वारा इनकी प्रामाणिकता सिद्ध हुई है। रामस्टर द्वारा सम्मोहित कुछ व्यक्ति उसे तथा निष्पक्ष निरीक्षकों को ऐसे दूरस्थ विदेशी स्थानों पर लेकर गये जहाँ वे पहले कभी नहीं गये थे। बहुत से मामलों में वे इमारतें या उनके अवशेष उनके द्वारा पूर्व-वर्णित 'पिछले जन्म के घरों' से हूबहू मिलते थे। इन वर्णनों को, इन सम्मोहित व्यक्तियों द्वारा अपने अनुभवों को सिद्ध करने के लिए विदेश जाने के पूर्व, रामस्टर के आफिस में रिकार्ड कर लिया गया था।

सावधानी-पूर्वक किये गये ये वैज्ञानिक परीक्षण हमें निश्चित ही इस निष्कर्ष पर ले जाते हैं कि पुर्नजन्म का किसी न किसी रूप में अस्तित्व है ही। दुर्भाग्यवश वे हमें इस प्रकार की कोई गहन ज्ञान या जानकारी नहीं देते कि वास्तव में आत्मा का यह देहान्तरण कैसे होता है। इसलिए पुर्नजन्म की बहुत ही विकसित प्रक्रिया को समझने के लिए सूचना प्राप्त करने के लिए पूर्व जन्म की ओर प्रत्यावर्तन की यह विधि अधिक तो नहीं पर एक प्रारम्भिक प्रयास मानी जा सकती है। सनसनी फैलाने की मनोवृत्ति, अति-सरलीकरण और जनसमुदाय का ध्यान खींचने की स्पर्धा से घिरे ये प्रयोग, जिनमें से अधिकतर

वैज्ञानिक तौर पर नहीं किये जाते, पुनर्जन्म की अनेक जटिलताओं के बारे में लाभकारी सूचना-स्रोत के रूप में अत्यन्त सीमित हो जाते हैं।

एक बार मानव, सदा मानव?

पुनर्जन्म के बारे में एक अन्य लोक-प्रचलित मिथ्या धारणा यह है कि आत्मा एक बार मानव-रूप प्राप्त करने के पश्चात् अगले जन्म में सदैव पुन: मानव-रूप में लौट कर आता है, और कभी भी निम्नतर योनियों में पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता। हम मानव के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु हम कुत्ते, बिल्ली, सूअर, अथवा निम्नतर योनियों में भी आ सकते हैं। किन्तु आत्मा, चाहे उच्च शरीरों में प्रवेश करे अथवा निम्नतर शरीरों में, वह अपरिवर्तित रहता है। किसी भी दशा में, अगले जन्म में जिस प्रकार का शरीर मनुष्य को मिलता है, उसका निर्धारण इसी जीवन में विकसित की गई चेतना और कर्म के अविचल विधान द्वारा होता है। भगवद्गीता जो पुनर्जन्म पर सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत-ग्रन्थ है, जिसे स्वयं श्रीभगवान् ने बोला है, स्पष्ट रूप से बताती है : "जब कोई व्यक्ति तमोगुण की मन:स्थिति में प्राण त्यागता है, वह पशु-योनि में जन्म लेता है।" (भगवद्गीता १४.१५) "एक बार मानव, तो सदा मानव" इस काल्पनिक उक्ति की पुष्टि के लिए न तो कोई वैज्ञानिक, और न ही कोई शास्त्रीय साक्ष्य उपलब्ध है। यह उक्ति पुनर्जन्म विषयक सच्चे सिद्धान्तों के विरुद्ध है—वे सिद्धान्त, जिनको अनादि काल से करोड़ों लोगों ने समझा है और इसे मानते आए हैं।

मृत्यु कष्टरहित परिवर्तन नहीं है

वे पुस्तकें जो मृत्यु का सुनहरा चित्र प्रस्तुत करती हैं और मनुष्य को अगले जीवन में मानव-जन्म के प्रति आश्वस्त करती हैं, खतरनाक

रूप से भ्रामक हैं। लेखक मृत्यु का चित्रण एक सुन्दर, कष्टरहित परिवर्तन, चेतना व शान्ति के नूतन और उच्चतर आयामों की ओर बढ़ने और प्रगति का अनुभव करने के एक अवसर के रूप में करते हैं।

पुनर्जन्म के बहुत से नवीन सिद्धान्तकार हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि महानिद्रा के संक्षिप्त समय के पश्चात् हम एक गर्म, तैरती, बहती हलचल का अनुभव करेंगे, जब आत्मा अपने अगले मानव शरीर को ग्रहण करने की ओर धीरे धीरे अग्रसर होगा। तब, हमें बताया जाता है, हम आरामदायक मानव गर्भ में प्रवेश करते हैं, जहाँ हम बाहर के निर्दय तत्त्वों से सुरक्षित, आराम के साथ उस समय तक सिकुड़े पड़े रहते हैं, जब तक हम अन्ततः अपनी माता के संरक्षण से अपने आपको मुक्त करके बाहर नहीं आ जाते।

यह सब सुनने में बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है, परन्तु कटु सत्य यह है कि जन्म और मृत्यु घृणास्पद और पीड़ादायक अनुभव हैं। महान् सन्त कपिल मुनि मृत्यु की सच्ची अनुभूति के विषय में अपनी माता को बताते हैं : ''उस रुग्ण दशा में भीतर से वायु के दबाव के कारण आँखे बाहर निकल आती हैं और उसकी ग्रन्थियाँ कफ से भर जाती हैं। उसे साँस लेने में कठिनाई होती है, और कंठ में खरखराहट की ध्वनि होती है...वह अत्यन्त दयनीय अवस्था में असह्य पीड़ा के साथ और चेतनारहित होकर मरता है।'' (श्रीमद्भागवतम् ३.३०.१६-१८) आत्मा शरीर में रहने का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि मृत्यु के क्षण में, प्रकृति के नियम इसे बलपूर्वक बाहर निकलने को विवश करते हैं। जैसे कोई भी व्यक्ति नहीं चाहता कि उसे अपने घर से बलपूर्वक बाहर निकाल दिया जाए, स्वाभाविक रूप से आत्मा भी भौतिक शरीर से बाहर निकाले जाने का विरोध करता है। क्षुद्र से क्षुद्र कीट भी मृत्यु से बचने के लिए, जब इनके जीवन को खतरा पैदा हो जाता है, बड़ी ही आश्चर्यजनक योग्यताओं और कौशल का प्रदर्शन

करते हैं। परन्तु जिस प्रकार मृत्यु प्रत्येक जीव के लिए अटल है, उसी प्रकार इससे सम्बद्ध भय और कष्ट भी अनिवार्य हैं।

वैदिक शास्त्रों से हमें पता चलता है कि केवल आत्म-सिद्ध, मुक्त आत्माएँ ही, बिना परेशानी के मृत्यु का अनुभव करने की शक्ति रखते हैं। यह इसलिए सम्भव है, क्योंकि ऐसे अत्यन्त उन्नत व्यक्ति अपने अस्थायी शरीरों के प्रति पूरी तरह अनासक्त रहते हैं, उस ज्ञान में दृढ़ होकर कि वे आत्मा हैं, जिसका भौतिक शरीरों से स्वतन्त्र, शाश्वत तथा अभौतिक अस्तित्व है। ऐसे महात्मा निरन्तर आध्यात्मिक आनन्द की स्थिति में रहते हैं, और वे मृत्युकालीन शारीरिक वेदनाओं और परिवर्तनों से विचलित नहीं होते।

परन्तु भौतिक जगत् में जन्म लेना भी 'पिकनिक' जैसा नहीं समझा जाना चाहिए। महीनों तक मानव-भ्रूण गर्भ के अन्धकार में सिकुड़ा पड़ा रहता है, कठोर क्लेश सहता है, माँ के पेट की औदरिक आग से झुलसता है, अचानक हलचलों से निरन्तर उछाल खाता है, और एक थैले या गर्भाशय के तंग स्थान में, जो उसके शरीर को गर्भ में घेरे रहता है, लगातार दबावों को सहता है। यह कठोर, संकुचित थैली बालक की पीठ को सदा कमान की तरह मुड़ा रहने को विवश करती है। इसके अलावा अजन्मा बालक भूख-प्यास से सताया जाता है, और उदर में निवास करने वाले भूखे कृमि बारम्बार उसके सारे शरीर को काटते रहते हैं। वेद बताते हैं कि जन्म इतना क्लेशप्रद होता है कि यह प्रक्रिया पूर्वजन्म की किसी भी स्मृति को, यदि कोई शेष बची हो, मिटा देती है।

वैदिक-शास्त्र व्याख्या करते हैं कि मानव-जन्म बहुत ही दुर्लभ है। दूसरे शब्दों में, भौतिक जगत् में अधिकतर जीवों ने अमानवी रूप ग्रहण किये हैं। यह तब होता है, जब आत्मा मानव-जीवन के लक्ष्य, अर्थात् आत्म-साक्षात्कार को त्याग कर पशु-वृत्तियों में उलझ जाता है।

तब तो उसे अगला जन्म पशु अथवा पशु से भी निम्नतर योनियों में लेना पड़ता है।

लोक-प्रचलित साहित्य में वर्णित पुनर्जन्म सम्बंधी मतवादों को उसी तरह देखना चाहिए जिस प्रकार वे हैं—विश्वास, सम्मतियाँ, कल्पित मान्यताएँ और केवल बौद्धिक उड़ानें।

भौतिक ब्रह्माण्ड नियमों से शासित है। नियमों का एक अन्य संग्रह सूक्ष्म ब्रह्मांड को संचालित करता है, जिसमें आत्मा के देहान्तरण और कर्म के नियम शामिल हैं। भगवद्गीता और अनेक अन्य वैदिक साहित्य में वर्णित किए गये प्रकृति के इन सूक्ष्म किन्तु कठोर नियमों के अधीन ही पुनर्जन्म की वास्तविक प्रक्रिया कार्य करती है। ये नियम यों ही, कपोल-कल्पना द्वारा अस्तित्व में नहीं आये, बल्कि ये परम नियन्ता, भगवान् श्रीकृष्ण के अधीन काम करते हैं, जिन्होंने गीता (९.१०) में इसकी पुष्टि की है, "भौतिक प्रकृति मेरे अधीन रह कर कार्य करती है...इसके नियम के अन्तर्गत सृष्टि बारम्बार प्रकट होती है और इसका प्रलय भी होता है।"

पुनर्जन्म के सम्बंध में मनभावन विचारधाराएँ विनोदपूर्ण और चित्ताकर्षक हो सकती हैं, परन्तु हमारी नियति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इन बचकाना, अत्यन्त सरलीकृत, त्रुटिपूर्ण और भ्रामक चिंतनों पर हम विश्वास और श्रद्धा नहीं कर सकते, चाहे वे कितने ही आकर्षक प्रतीत क्यों न हों।

इसके विपरीत, वैदिक साहित्य ने हजारों वर्षों तक पुनर्जन्म विज्ञान के विषय में व्यावहारिक, सम्पूर्ण और उपयोगी ज्ञान प्रदान किया है। बुद्धिमान् लोगों के लिए यही बुद्धिमत्ता *शनैः शनैः* चेतना की उच्चतर अवस्थाओं की ओर आगे बढ़ना सम्भव बना सकती है, और अन्त में जन्म-मृत्यु के अन्तहीन चक्र से पूरी तरह बचा सकती है। यही मानव-जीवन का सच्चा लक्ष्य है।

८

लौट कर मत आओ

प्राचीन भारत के ऋषि हमें बताते हैं कि मानव-जीवन का लक्ष्य पुनर्जन्म के अन्तहीन चक्र से मुक्त होना है। वे चेतावनी देते हैं, लौट कर मत आओ!

कुल मिला कर, जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे हुए जीवात्मा की स्थिति कोरिन्थ के राजा, यूनानी वीर, सिसीफस जैसी है, जिसने एक बार देवताओं को ठगना चाहा, परन्तु उसे ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण दण्ड मिला जिससे वह किसी भी प्रकार विजय प्राप्त न करे। उसे एक बड़ा पत्थर पहाड़ पर ऊपर की ओर लुड़का कर ढोने का दण्ड मिला, परन्तु हर बार ज्योंही पत्थर चोटी पर पहुँचता, वह फिर नीचे की ओर लुढ़क जाता, और सिसीफस को यह कठोर कार्य अनन्त बार दोहराना पड़ता। उसी प्रकार भौतिक जगत् में जब जीवात्मा एक जीवन समाप्त करता है, तब पुनर्जन्म के विधान के अनुसार, उसे दूसरा जीवन प्रारम्भ करना पड़ता है। प्रत्येक जीवन में वह अपने भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कठोर श्रम करता है, परन्तु उसके प्रयास सदैव विफल होते हैं, और उसे फिर से प्रयास प्रारम्भ करना पड़ता है।

सौभाग्य से, हम सिसीफस नहीं हैं, और जन्म-मृत्यु के चक्र से बाहर निकलने के लिए एक मार्ग विद्यमान है। इस मार्ग में पहला चरण यह ज्ञान है कि "मैं यह शरीर नहीं हूँ"। वेद घोषणा करते हैं, *अहं ब्रह्माऽस्मि*—"मैं विशुद्ध आत्मा हूँ।" आत्मा के रूप में हमारा

परमात्मा, श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् से सम्बंध है। व्यष्टि जीवात्मा की तुलना उस चिनगारी से की जा सकती है, जो परमात्मा रूपी अग्नि से निकलती है। जिस प्रकार चिनगारी और आग गुणात्मक रूप से एक हैं, व्यष्टि आत्मा (जीवात्मा) का आध्यात्मिक गुण वही है, जो परमात्मा का है। सत्, चित् और आनंद ही दोनों का स्वरूप है, जो दिव्य है। सारे जीव मूलत: आध्यात्मिक लोक में भगवान् के दिव्य, प्रिय दास के रूप में रहते हैं, परन्तु जब जीवात्मा उस सम्बंध को छोड़ देता है, तो वह भौतिक शक्ति के अधीन हो जाता है। उस समय सनातन आत्मा बारम्बार होने वाले जन्म-मृत्यु के चक्र में फँस जाता है और अपने कर्मानुसार विभिन्न शरीरों को ग्रहण करता रहता है।

पुनर्जन्म से मुक्त होने के लिए, हमें कर्म के विधान को पूरी तरह समझना होगा। 'कर्म' संस्कृत का शब्द है, जो प्रकृति के नियम की परिभाषा बताता है। यह नियम क्रिया-प्रतिक्रिया के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त के समान है। कभी-कभी हम कहते हैं, "यह घटना मेरे लिए घटने वाली थी।" हम प्राय: सहज ही अनुभव करने लगते हैं कि हम ही किसी न किसी तरह उन अच्छी-बुरी घटनाओं के लिए उत्तरदायी हैं, जो हमारे साथ घटती हैं, यद्यपि इसका सही-सही नियंत्रण किस प्रकार होता है, यह हमारी समझ से बाहर होता है। साहित्य के विद्यार्थी दुष्ट मनोवृत्ति से प्रेरित चरित्रों के दु:खद दुर्भाग्य का वर्णन करते हुए एक पद "काव्यात्मक न्याय (पोईट्रिक जस्टिस)" का उपयोग करते हैं। धर्म के क्षेत्र में, धर्म-विज्ञानी ऐसे सूत्रों के अर्थ पर बहस करते हैं, जैसे "आँख के बदले आँख", "दाँत के बदले दाँत" और "जैसा बोओगे, वैसा काटोगे।"

परन्तु कर्म का नियम इन अस्पष्ट सूत्रों और परिभाषाओं से आगे निकल जाता है और क्रिया-प्रतिक्रिया के पूर्ण विज्ञान को अपने में समेटता है, विशेषत: जहाँ तक कि यह पुनर्जन्म पर लागू होता है। इस

जीवन में, अपने विचारों और कर्मों द्वारा हम अपना अगला शरीर तैयार करते हैं, जो उच्चतर अथवा निम्नतर कोटि का हो सकता है।

मानव-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है; आत्मा को यह शरीर लाखों निम्नतर योनियों को पार करने पर ही प्राप्त होता है। यह केवल मानव-रूप में ही है कि जीवात्मा कर्म के नियमों को समझने और फलत: पुनर्जन्म से मुक्त होने के लिए बुद्धि रखता है। मानव-शरीर ही मात्र एक मुक्ति-द्वार है, जिसके द्वारा वह भौतिक अस्तित्व के कष्टों से छूट सकता है। वह जो मानव-रूप का दुरुपयोग करता है और आत्म-साक्षात्कार नहीं करता, किसी कुत्ते अथवा गधे से बेहतर नहीं होता।

कर्मों की प्रतिक्रिया धूल की तरह है, जो हमारी मूल, विशुद्ध आध्यात्मिक चेतना के दर्पण को ढक लेती है। यह दूषण केवल हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन से ही दूर किया जा सकता है, जो संस्कृत वर्णों में भगवान् के नामों से बना है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इस मंत्र की कर्म से मुक्त करने की शक्ति, जो बहुधा मुक्ति देने वाला महामंत्र कहा जाता है, समूचे वैदिक साहित्य में वर्णित है। श्रीमद्भागवतम्, जो पुराणों का नवनीत है, संस्तुति करता है, "अनजाने में भी श्रीकृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने से जन्म और मृत्यु की जटिल जालों में फँसे जीव तत्काल मुक्त हो जाते हैं।"

'विष्णु-धर्म' में कहा गया है, "यह शब्द 'कृष्ण' इतना मांगलिक है कि कोई भी व्यक्ति जो इस पवित्र नाम का उच्चारण करता है, तत्काल ही अनेकानेक जन्मों में किये पाप-कर्मों के फलों से मुक्त हो जाता है।" बृहन्नारदीय पुराण 'हरे कृष्ण' मंत्र-कीर्तन की प्रशंसा करते हुए कहता है कि वर्तमान पतित युग में मोक्ष प्राप्त करने के लिए यही सरलतम साधन है।

लेकिन प्रभावी होने के लिए, हरे कृष्ण मंत्र किसी ऐसे प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु से प्राप्त किया जाना चाहिए, जो स्वयं श्रीकृष्ण से प्रारम्भ होने वाली गुरु-शिष्य परम्परा में स्थित हो। ऐसे योग्य गुरु की कृपा से ही मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो सकता है। *चैतन्य-चरितामृत* में श्री चैतन्य महाप्रभु, जो स्वयं साक्षात् भगवान् हैं, घोषणा करते हैं, "अपने कर्मों के अनुसार सभी जीवात्माएँ समूचे ब्रह्माण्ड में घूम रही हैं। इनमें से कुछ उच्च ग्रह मण्डलों तक ऊपर उठ रही हैं, और कुछ निम्नतर ग्रह मण्डलों की ओर गिर रही हैं। परिभ्रमण करती हुई इन लाखों जीवात्माओं में से जो अत्यंत भाग्यशाली हैं, वे श्रीकृष्ण की कृपा से प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु से सम्बद्ध होने का अवसर पाती हैं।"

ऐसे प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु को कोई कैसे पहचाने? सबसे पहले, गुरु को भगवान् श्रीकृष्ण से प्रारम्भ होने वाली प्रामाणिक गुरु-शिष्य-परम्परा में स्थित होना चाहिए। एक ऐसा वास्तविक आध्यात्मिक गुरु, गुरु-शिष्य-परम्परा के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश को ग्रहण करता है, और बिना कोई परिवर्तन किये, अपने गुरुदेव से श्रवण किये उपदेशों को सीधे उसी रूप में दोहराता है। वह निर्विशेषवादी अथवा शून्यवादी नहीं होता है, बल्कि वह भगवान् का प्रतिनिधि होता है। इसके अलावा प्रामाणिक आध्यात्मिक गुरु पाप-कर्म (विशेषत: मांसाहार, अवैध मैथुन, द्यूत और मद्यपान) से बिल्कुल मुक्त होता है और वह सदैव—दिन के चौबीसों घंटे, कृष्णभावनामृत में संलग्न रहता है।

केवल ऐसे ही आध्यात्मिक गुरु मनुष्य को पुनर्जन्म से मुक्त करा सकते हैं। भौतिक अस्तित्व की तुलना जन्म-मृत्यु के एक विशाल महासागर से की जा सकती है। इस समुद्र को पार करने में मानव-रूप समर्थ नौका के समान है, और आध्यात्मिक गुरु इस नौका के

कप्तान हैं। वे शिष्य को निर्देश देते हैं, जिससे वह अपने मूल, आध्यात्मिक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है।

दीक्षा के समय, गुरु शिष्य के शेष कर्मों को अपने ऊपर लेने के लिए तैयार होते हैं। यदि शिष्य सच्चे आध्यात्मिक गुरु के निर्देशों का पूर्णरूपेण पालन करता है, तो वह पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापक-आचार्य श्रील प्रभुपाद ने एक स्थान पर लिखा है : "गुरु अपने ऊपर बहुत बड़ा दायित्व लेता है। उसे अपने शिष्य का मार्गदर्शन करना होगा, और उसे अमरत्व की परिपूर्ण स्थिति के लिए योग्य उम्मीदवार बनाना होगा। गुरु इतना सक्षम होना चाहिए कि वह शिष्य को वापस अपने घर अर्थात् भगवद्धाम लौटने के विषय में मागदर्शन दे सके।" वे अनेक बार विश्वास दिलवाते थे कि यदि कोई मनुष्य श्रवण से अधिक कुछ न करे अर्थात् केवल उन श्रीकृष्ण के विषय में सुनता रहे, जो परम नियन्ता हैं और सभी कारणों के कारण हैं, तो वह मुक्त हो जायेगा।

कर्म और पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिए व्यावहारिक प्रणालियाँ

इन्द्रियतृप्ति के लिए किए गए कर्म, जिनका उद्देश्य केवल मन और इन्द्रियों को प्रसन्न करना होता है, भौतिक बन्धन के कारण होते हैं, और जब तक कोई व्यक्ति ऐसे सकाम कर्मों में लगा रहता है, आत्मा का एक योनि से दूसरी योनि में बारम्बार देहान्तरण अवश्यम्भावी है।

श्रीकृष्ण के एक अवतार, भगवान् ऋषभदेव ने चेतावनी दी थी : "लोग इन्द्रियतृप्ति के लिए पागल हैं। जब मनुष्य इन्द्रियतृप्ति को जीवन का लक्ष्य मान बैठता है, तब वह निश्चित ही भौतिक जीवन के

पीछे पागल हो उठता है और सब प्रकार के पाप-कर्मों में लग जाता है। वह जानता नहीं कि उसके पूर्वकृत पाप-कर्मों के कारण उसे पहले ही एक शरीर मिला है, जो यद्यपि अस्थायी है तथापि उसके दु:खों का कारण है। सच तो यह है कि जीवात्मा को भौतिक शरीर मिलना ही नहीं चाहिए था, परन्तु उसे इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिक शरीर दिया गया है। इसलिए मैं सोचता हूँ कि एक बुद्धिमान् मनुष्य के लिए यह उचित नहीं है कि वह फिर से इन्द्रियतृप्ति के कर्मों में अपने आपको लगाये, जिनके कारण वह एक के बाद दूसरे भौतिक शरीरों को निरन्तर प्राप्त करता है। जब तक मनुष्य जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों के विषय में जिज्ञासा नहीं करता, तब तक वह हारता रहता है और अज्ञान से उत्पन्न दु:खों को भोगता है। चाहे पाप हों या पुण्य, कर्म का फल तो होता ही है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार के कर्म में लगा है, उसका मन *कर्मात्मक* अर्थात् सकाम-कर्मों में रंगा हुआ कहलाता है। जब तक मन मलिन है, चेतना अस्पष्ट है, और जब तक वह सकाम कर्मों में जुटा हुआ है, उसे भौतिक देह स्वीकार करनी ही होगी। जब जीव तमोगुण से आवृत होता है, वह न जीवात्मा को और न ही परमात्मा को समझता है, और उसका मन सकाम-कर्म के वश में रहता है। इसलिए जब तक वह ईश्वर से प्रेम नहीं करता, उस समय तक वह निश्चय ही बारम्बार भौतिक शरीर ग्रहण करने से छुटकारा नहीं पा सकता।'' (*श्रीमद्भागवतम्* ५.५.४-६)

जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होने के लिए सैद्धान्तिक समझ मात्र से अधिक की आवश्यकता होती है। यह *ज्ञान* कि मनुष्य भौतिक शरीर नहीं है, बल्कि आत्मा है, मोक्ष के लिए पर्याप्त नहीं है। उसे आत्मा के धरातल पर व्यवहार भी करना होगा। इसका नाम भक्तिमय सेवा है, जिसमें कर्म और पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिए अनेक व्यावहारिक प्रणालियाँ भी सम्मिलित हैं।

१. भक्ति का पहला सिद्धान्त है, हरे कृष्ण मंत्र का सदैव कीर्तन करना : हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥

२. मनुष्य को वैदिक साहित्य का स्वाध्याय भी नियमित रूप से करना चाहिए, विशेषत: भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतम् का जिससे कि आत्मा के स्वरूप, कर्म-विधान, पुनर्जन्म की प्रक्रिया और आत्म-साक्षात्कार की विधि, के विषयों की पूरी समझ विकसित हो सके।

३. मनुष्य को केवल अध्यात्मीकृत (श्रीभगवान् को अर्पित) शाकाहारी भोजन करना चाहिए। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य को यज्ञ के रूप में उन्हें अर्पित किया गया भोजन ही ग्रहण करना चाहिए, नहीं तो वह कर्म की प्रतिक्रियाओं में उलझ जायेगा।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः॥

''यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्ति के साथ पत्र, पुष्प, फल अथवा जल देता है, तो मैं उसे स्वीकार कर लेता हूँ।'' (भगवद्गीता ९.२६) इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि भगवान् की रुचि मद्य, मांस, मछली या अंडे में नहीं है, बल्कि सरल शाकाहारी भोजनों में है, जो प्रेम और भक्ति के साथ बनाये गये हों।

हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि कारखानों में काम करने वाले लोग भोजन पैदा नहीं कर सकते। मनुष्य गेसोलिन (पेट्रोल), प्लास्टिक से बनी माइक्रोचिप्स (इलेक्ट्रोनिक पुर्जे) या स्टील नहीं खा सकते हैं। भोजन भगवान् की निजी प्राकृतिक व्यवस्थाओं के अनुसार पैदा होता है, और श्रीकृष्ण को भोजन का अर्पण भगवान् के प्रति हमारे अपने ऋण को स्वीकार करना है। श्रीकृष्ण को भोजन कैसे अर्पित किया जाए? इसकी विधि बड़ी सरल है और आसानी से पूरी की जा सकती है। कोई भी व्यक्ति अपने घर

अथवा कमरे में एक छोटी सी वेदी बना कर, उस पर भगवान् श्रीकृष्ण और आध्यात्मिक गुरु के चित्र को रख सकता है। भोग अर्पण करने की सरलतम विधि है, भोजन को चित्रों के सामने रखना और कहना, "मेरे प्यारे भगवान् श्रीकृष्ण! मेरे इस विनम्र भोग को स्वीकार कीजिए," और हरे कृष्ण का कीर्तन करना। इस सरल प्रक्रिया की कुंजी है, भक्ति। भगवान् भोजन के भूखे नहीं हैं, परन्तु हमारे प्रेम के भूखे हैं और ऐसा परिष्कृत भोजन खाना, जो श्रीकृष्ण ने स्वीकार कर लिया है, अवश्य ही मनुष्य को कर्म से मुक्त कर देता है और भौतिक दूषण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है।

४. श्रीकृष्ण को शाकाहारी भोजन अर्पित करने के सकारात्मक सिद्धान्त में मांस, मछली और अंडे खाने का नकारात्मक सिद्धान्त स्वयमेव शामिल हो जाता है। मांस खाने का अर्थ यह है कि हम अनावश्यक ही दूसरे जीवों के प्रति हिंसा करने में भाग ले रहे हैं। यह हिंसा हमें इस जन्म में अथवा अगले जन्म में दुष्कर्मों से होने वाली प्रतिक्रियाओं की ओर ले जाती है। कर्म के सिद्धान्त बताते हैं कि यदि कोई व्यक्ति भोजन के लिए किसी पशु को मारता है, तब उसके अगले जीवन में वह भी मारा और खाया जायेगा। वनस्पतियों का जीवन लेने में भी कर्म का नियम लागू होता है, परन्तु श्रीकृष्ण को भोजन अर्पित करने की क्रिया से वह निरस्त हो जाता है, क्योंकि वे कहते हैं कि वे इस प्रकार के शाकाहारी भोग को स्वीकार कर लेंगे। मनुष्य को मादक वस्तुओं का उपयोग, जैसे कॉफी, चाय, शराब और तम्बाकू भी छोड़ देना चाहिए। मादक द्रव्य के सेवन करने का मतलब है कि हम तमोगुणी प्रवृत्ति के साथ काम कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप हमें अगले जीवन में निम्नतर योनि में जन्म लेना पड़ सकता है।

५. पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त होने की अन्य प्रणालियों में अपने कर्मों के फल को भगवान् को अर्पित करना सम्मिलित है। शरीर के

पालन-पोषण मात्र के लिए प्रत्येक मनुष्य को काम करना पड़ता है, परन्तु यदि काम अपनी खुद की तुष्टि के लिए ही किया जाता है, तो उसे कर्म-फल को भी स्वीकार करना होगा और भावी जीवनों में अच्छी और बुरी प्रतिक्रियाओं को सहन करना पड़ेगा। भगवद्गीता चेतावनी देती है कि काम भगवान् की तुष्टि के लिए करना चाहिए। भक्ति-सेवा के नाम से जाना जाने वाला यह कार्य कर्म-मुक्त होता है। कृष्णभावनामृत में रह कर कर्म करने का अर्थ है, यज्ञ। मनुष्य को भगवान् की तुष्टि के लिए अपने समय या धन की बलि देनी चाहिए। "भगवान् विष्णु के लिए यज्ञ के रूप में कर्म किया जाना चाहिए, नहीं तो कर्म मनुष्य को इस भौतिक जगत् के साथ बाँधता है।" (भगवद्गीता ३.९) भक्ति के रूप में किया जाने वाला कर्म मनुष्य की न केवल कर्म के फल से रक्षा करता है, बल्कि धीरे धीरे भगवान् की प्रेमपूर्ण दिव्य सेवा की ओर ऊपर उठाता है, जो भगवान् के लोक में प्रवेश करने की कुंजी है।

किसी को अपना व्यवसाय बदलने की आवश्यकता नहीं है। कोई व्यक्ति लेखक हो सकता है और वह श्रीकृष्ण के लिए लिख सकता है; एक चित्रकार श्रीकृष्ण का चित्र बनाए, एक रसोइया श्रीकृष्ण के लिए भोजन बनाए। अथवा, यदि कोई व्यक्ति अपनी क्षमताओं और योग्यताओं को सीधे श्रीकृष्ण की सेवा में लगाने में असमर्थ हो, तो वह अपनी कमाई का छोटा-सा अंश संसार भर में कृष्णभावनामृत के विस्तार के लिए सहायता देकर अपने कर्मफलों से छूट सकता है। तथापि प्रत्येक मनुष्य को सदैव ईमानदारी से कमाना चाहिए। उदाहरणार्थ, किसी को कसाई या जुआरी का काम नहीं करना चाहिए।

६. माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों का पालन-पोषण भगवद्भावना में करें। वेद कहते हैं कि माता-पिता अपने बच्चों के कर्मों की प्रतिक्रियाओं के लिए उत्तरदायी हैं। दूसरे शब्दों में, यदि

आपका बालक बुरा काम करता है, तो आपको भी उसके कर्म के लिए अंशत: दु:ख भोगना पड़ेगा। बालकों को भगवान् के नियमों का पालन करने के महत्त्व की, पाप-व्यवहार से बचने की और परमेश्वर के प्रति प्रेम को विकसित करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। माता-पिता को चाहिए कि वे अपनी सन्तान को कर्म के सूक्ष्म विधान और पुनर्जन्म के विषय में भलीभाँति परिचित करायें।

७. कृष्णभावनाभावित व्यक्तियों को अवैध मैथुन अर्थात् विवाहेतर मैथुन अथवा सन्तानोत्पत्ति के अतिरिक्त मैथुन नहीं करना चाहिए। यह भी समझ लेना चाहिए कि गर्भपात जैसे कर्म की विशेष प्रतिक्रिया होती है—जो बिना पैदा हुए बच्चों की हत्या में भाग लेते हैं, वे ऐसी माँ के गर्भ में स्थान पाते हैं, जो स्वयं गर्भपात चाहती है, और वे स्वयं उसी भयंकर रीति से मार डाले जाते हैं। लेकिन यदि कोई ऐसे पाप-कर्म करना छोड़ने के लिए सहमत हो जाता है, वह भगवान् के पवित्र नामों के निरपराध भक्तिमय कीर्तन के द्वारा कर्म के परिणाम से मुक्त हो सकता है।

८. मनुष्य को उन लोगों की नियमित रूप से संगति करनी चाहिए, जो स्वयं कर्म के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयत्न कर रहे हैं और जो जन्म-मृत्यु के चक्र को तोड़ कर निकलने के लिए सचेष्ट हैं। ऐसे लोग विश्व के आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अनुरूप जीवन बिता रहे हैं, अत: भगवान् श्रीकृष्ण के ये भक्त भौतिक प्रकृति के प्रभाव से ऊपर उठ जाते हैं, और उनके जीवन में सच्चे आध्यात्मिक लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जिस प्रकार किसी बीमार के सम्पर्क में आ जाने से आदमी को बीमारी लग जाती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के भक्तों का संग करके कोई भी मनुष्य अपने दिव्य गुणों को अपने में धीरे धीरे दोबारा जगा सकता है।

इन सरल विधियों का पालन करके कोई भी व्यक्ति कर्म के

प्रभावों से मुक्त हो सकता है। इसके विपरीत, यदि कोई इनका पालन नहीं करता, वह निश्चित ही भौतिक जीवन के कर्मों और उनकी प्रतिक्रियाओं में उलझ जाता है। प्रकृति के नियम बहुत कठोर हैं, और दुर्भाग्य से अधिकतर लोग उन्हें नहीं जानते। परन्तु नियमों का न जानना कोई बहाना नहीं माना जा सकता। जो तेज गति से कार चलाने के लिए पकड़ा जाता है, यदि वह न्यायाधीश को बताये कि उसे गति मर्यादा की जानकारी नहीं थी, तो उसे छोड़ा नहीं जायेगा। यदि कोई व्यक्ति स्वास्थ्य के नियमों से अनभिज्ञ है, तो प्रकृति उसे रोगग्रस्त होने से छूट नहीं देगी। जो बालक अग्नि की प्रकृति से अनजान है, यदि वह अपना हाथ उसमें डाल दे, तो वह अवश्य ही जल जायेगा। अतएव अपने आपको अन्तहीन जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त करने के लिए हमें कर्म के नियमों को और पुनर्जन्म को समझना होगा। अन्यथा हमें इस भौतिक जगत् में बारम्बार लौटना होगा, और हमें याद रखना चाहिए कि हमारा सदैव मानव-रूप में ही लौटना निश्चित नहीं है।

आत्मा अपनी बद्ध अवस्था में काल और आकाश में से निरन्तर गुजरता रहता है। कर्म के विराट् विधान के अनुसार, आत्मा भौतिक ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोकों में विभिन्न शरीर ग्रहण करता है। लेकिन आत्मा जहाँ भी जाता है, उसे उन्हीं परिस्थितियों का सामना करना होता है। जैसा कि श्रीकृष्ण भगवद्गीता में (८.१६) कहते हैं : "भौतिक विश्व में ऊँचे-से-ऊँचे लोक से लेकर निम्नतम लोक तक, सभी स्थान दु:खमय हैं जहाँ पुन: पुन: जन्म-मृत्यु होती रहती है। परन्तु जो मेरे लोक को प्राप्त कर लेता है, वह फिर कभी जन्म नहीं लेता।" गीता और अन्य वेदसाहित्य निर्देशों की हस्त-पुस्तिका की भाँति हैं, जो जीवन की यात्रा के वास्तविक लक्ष्य को हमें सिखाते हैं। पुनर्जन्म के विज्ञान को समझ लेने से हम स्वयं को कर्म के बल क्षेत्र से मुक्त कर लेते हैं और प्रतिपदार्थमय सत्-चित्-आनंद लोक में वापस चले जाते हैं।

श्रील प्रभुपाद के विषय में

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का आविर्भाव १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था। अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम बार भेंट हुई। एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्त्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान्-भक्त, आचार्य एवं चौंसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित करने की इनको प्रेरणा दी। श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई.) प्रयाग (इलाहाबाद) में विधिवत् उनके दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गए।

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें। आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने भगवद्गीता पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की। उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के प्रूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे। अब यह पत्रिका उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की उपाधि से सम्मानित किया। १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें। तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे। वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था। यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले *श्रीमद्भागवतम्* पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या। वहीं उन्होंने अन्य लोकों की सुगम यात्रा नामक पुस्तिका भी लिखी थी।

श्रीमद्भागवतम् के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका गए। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थ-रत्न प्रस्तुत किए।

जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयार्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था। अत्यन्त कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई. में उन्होंने, अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की। १४ नवम्बर १९७७ ई. को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने के पूर्व श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन से संघ को विश्वभर में सौ से अधिक आश्रमों, विद्यालयों, मन्दिरों, संस्थाओं और कृषि-समुदायों का बृहद् संगठन बना दिया।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम-मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी। यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जाएगा। इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन तथा श्रील प्रभुपाद-स्मृति संग्रहालय का निर्माण हुआ है। ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति के मूल रूप का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। मुंबई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है। इसके अतिरिक्त भारत में दिल्ली, बैंगलूर, अहमदाबाद, बड़ौदा तथा अन्य स्थानों पर सुन्दर मन्दिर हैं।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण सर्वाधिक मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्यग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ ५० से अधिक भाषाओं में अनूदित हैं। १९७२ ई. में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है। इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठारह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं। इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी। उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं।